॥ श्री ॥

प्रथम भाग

मानस सार

पृष्ठ १५ चार लाइन। शब्दार्थ—जिहि=जिसके। सुमरति=स्मरण करते। सिद्धि=सफल। गणनायक=गणेश। करि=हाथी। बर=श्रेष्ठ। अनुग्रह=कृपा, दया। सदन=घर। सरोरुह=कमल। तरुण=युवा। अरुण=लाल सूर्य। बारिज =कमल। उर=हृदय। छीर=दूध।

अर्थ—जिन श्रेष्ठ हाथी के स्वरूप वाले गणपति के स्मरण करने से सफलता प्राप्त होती है। वे ही सब गुणों की खानि विद्वान कृपा करें।

नीले कमल के समान श्याम शरीर और तुरन्त के फूले हुये लाल कमल के सदृश नेत्रों वाले और सदा छीर सागर में शयन करने वाले श्री विष्णु जी मेरे हृदय में अपना स्थान करें।

चौपाई दो लाइन। शब्दार्थ—रघुकुल मणि=रघुवंश कुल में श्रेष्ठ। नाऊ=नाम। धुरन्धर=विशेष रूप से। निधि= खानि, खजाना।

अर्थ—अयोध्यापुरी में रघुवंशियों में रत्न, एक राजा हुए। जिनका नाम वेद में दशरथ प्रसिद्ध है। वे धर्मज्ञ गुणों की खानि और ज्ञानी हुए। जिनका अन्तःकरण सदा भगवान की भक्ति में लगा रहता था।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—कौशल्यादि=कौशल्या के सिवाय कैकेयी और सुमित्रा। पुनीत=पवित्र। अनुकूल=समान। हरि=ईश्वर। विनीत=नम्र।

अर्थ—जिनकी कौशल्या आदि सब रानियां पवित्र आचरण वाली थी, जो अपने पति भक्ति में लीन और उनकी आज्ञाकारिणी रहती थीं। तथा भगवान के कमल स्वरूपी चरणारविन्दों में नम्र अर्थात लीन रहती थी।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—भूपति=राजा, पृथ्वी पति। ग्लानि=घृणा, दुख। सुत=पुत्र। महिपाला=पृथ्वी का पालन करने वाला अर्थात् राजा। विशाला=बड़ा अधिक। बहुविधि=अनेक तरह। त्रिभुवन=तीनो लोक। भगत भय हारी=भक्तों के दुख को नाश करने वाले।

अर्थ—एक समय राजा दशरथ जी के मन में यह दुख हुआ कि मेरे पुत्र नहीं है। इससे राजा तुरन्त गुरु वशिष्ठ जी के घर गये। और चरणों में प्रणाम कर बहुत प्रकार से विनती की, राजा ने अपना दुख सुख सब गुरुजी को सुनाया। तब वशिष्ठ जी ने अनेक प्रकार से समझाया। कि हे राजन! धैर्य धारण कीजिये। तीनों लोकों में प्रसिद्ध तथा भक्तों के भय को दूर करने वाले आपके चार पुत्र होंगे।

चौपाई चार लाइन। शब्दार्थ—युता=युक्त, सहित। अवसर=मौका। मधु मासा=चैत का महिना। अभिजित=शुभ मुहूर्त। मध्य दिवस=दो पहर। विश्रामा=आराम। सुरभि=सुगन्धित। बाऊ=वायु, हवा। चाऊ=चाव, उमंग।

अर्थ—थोड़ा समय ऐसे ही आनंद से व्यतीत हुआ। तब वह समय आया जब भगवान श्रीरामचन्द्र जी पैदा हुये। नौमी तिथि, पवित्र चैत महीना, शुक्ल पक्ष, भगवान के प्यारे शुद्ध मुहूर्त में दो पहर के समय जब कि न बहुत ठंड थी और न धूप, किन्तु लोगों के आराम का पवित्र समय था।

ठंडी धीमी सुगन्धित वायु बह रही थी। देवता प्रसन्न और सन्तजनों के चित्त में भारी उमंग थी।

दोहा दो लाइन। शब्दार्थ—विप्र=ब्राह्मण। धेनु=गाय। सुर=देवता। मनुज=मनुष्य। निर्मित=अवतार धारण। गोपार=सयमी।

अर्थ—अपनी इच्छा से देह धारण करने वाले। तथा माया के (सत् रज तम) आदि गुण और इन्द्रियों से परे भगवान (श्री रामचन्द्र जी) ने ब्राह्मण, गौ, देवता और साधुओं की भलाई के लिये मनुष्य का अवतार लिया।

पृष्ठ १६ चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—शिशु=बच्चा। संभ्रम=संदेह युक्त। धाईं=दौड़ी। मगन=लिप्त, लीन। ब्रह्मानन्द=परम आनंद। पुलक=फूले हुए। धीरा=धीरज। मति=बुद्धि।

अर्थ—बालक के रोने की अत्यन्त प्रिय वाणी सुनकर तुरन्त सब रानियां चली आईं। प्रसन्न होकर दासियां जहां तहां दौड़ीं, और सब नगर निवासी आनन्द से मग्न हो गये। पुत्र का जन्म कानों से सुनकर राजा दशरथ मानो ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये याने परमात्मा में लीन हो गये। मन में प्रेम उपजा और शरीर पुलकित हो गया। वे बुद्धि शांति कर उठना चाहते थे।

चौपाई ३ लाइन। शब्दार्थ—परमानन्द=बहुत प्रसन्न। हंकारा=बुलाने वाला। द्विजन=ब्राह्मण गण। अनुपम=उपमा रहित। रूप राशि=विशेष सुन्दर। सिराई=ठण्डे पड़ना या चुकना।

अर्थ—अत्यन्त आनन्द से परिपूर्ण होकर राजा ने कहा कि बाजे वालों को बुलाकर बाजे बजवाओ। और गुरुजी वशिष्ठ जी को बुलाने को हलकारा गया। वे ब्राह्मणों के साथ राज द्वार में आये। उन्होंने आकर उस सुन्दर बालक को देखा। जो बहुत ही रूपवान था। जिसके गुण कहे नहीं जा सकते थे।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—हाठक=सोना, धतूरा। धेनु=गाय।

अर्थ—फिर राजा ने नान्दी मुख श्राद्ध करके सब जाति कर्म संस्कार किये। और ब्राह्मणों को दान में स्वर्ण, गाय, वस्त्र मणि आदि दिये।

चौपाई ५ लाइन। शब्दार्थ—कैकय=कैकय देश के राजा। सुता=पुत्री (कैकेयी) जन्मत=पैदा करती हुई। ओऊ=वे। समउ=समय। शारद=सरस्वती। अहिराजा=

शेष=नाग । नाम करण=नाम संस्कार । भाखा=कहा । गुनि=विचार ।

अर्थ—कैकेयी और सुमित्रा, इन दोनों ने भी सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया । उस समय के समाज के सुख और सम्पत्ति को सरस्वती और शेष नाग भी हजार जिह्वा से नहीं कह सकते थे । इस प्रकार कुछ दिन बीते । किंतु दिन और रात जाते हुये न जान पड़े । नाम संस्कार का समय आया जान कर राजा ने ज्ञानवान मुनि को बुला भेजा । और उनकी पूजा करके राजा ने इस प्रकार कहा कि हे मुनि जी ! वे ही नाम रखिये जो आप ने सोच रखे हों ।

चौपाई ५ लाइन । शब्दार्थ—अनूपा=अच्छे । स्वमति=अपनी राय । अनुरूपा=मुआफिक, अनुकूल । सुख राशी=बहुत आनन्द दायक । सीकरते=दया के कण से । सुपासी=सुखी । अखिल लोक=पूरा संसार । विश्व भरण पोषण=संसार को पालने वाले । ताकर=उनका । सुमिरनतें=याद करने से । रिपु नाशा=शत्रु का नाश ।

अर्थ—मुनि ने कहा हे राजन इनके उपमा रहित अनेक अच्छे नाम हैं । किन्तु मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ । जो आनन्द के समुद्र और आनन्द दायक हैं, जिनकी दया के कण [illegible] तीनों लोक सुखी होते हैं । उन आनन्द के देने वाले का 'राम' [illegible]ा नाम है । जो कि सब संसार को शांति का देने वाला है । [illegible] [illegible]गत का पालन पोषण करते हैं उनका नाम 'भरत' ऐसा [illegible]ा । और जिनके केवल याद करने से शत्रु का नाश हो जाता । उनका वेदों मे प्रकाशित नाम) शत्रुघ्न है । शत्रुहन

दोहा २ लाइन । शब्दार्थ—लच्छनधाम=सुलक्षणों के घर । आधार=आसरा । तेहि=उसका ।

अर्थ—सुलक्षणों के घर राम जी प्यारे और समस्त विश्व के आधार हैं । गुरु वशिष्ठ जी ने उनका उदार नाम 'लक्ष्मण' ऐसा रक्खा ।

चौपाई ४ लाइन । शब्दार्थ—विपिन=जंगल । जग्य=यज्ञ, होम । जोग=योग । मारीच=राक्षस का नाम । सुबाहु=राक्षस का नाम । हि=को । गाधि तनय=विश्वामित्र । व्यापी=छाई । हरि=राम । निसिचर=निसि=रात+चर=चलने वाले रात को चलने वाले अर्थात् राक्षस । अवतरेऊ=अवतार लिया । महि भारा=पृथ्वी का बोझ ।

नोटः—गाधि=विश्वामित्र के पिता का नाम । तनय=पुत्र ।

अर्थ—महर्षि विश्वामित्र जी बड़े ज्ञानी थे, जो वन में एक शुभाश्रम समझकर रहा करते थे । वहां मुनि गण जप यज्ञ और योगाभ्यास करते थे । परन्तु मारीच और सुबाहु नामक ये पापी राक्षसों से बहुत डरते थे । विश्वामित्र के मन में चिन्ता हुई कि ये पापी निशाचर भगवान राम के बिना नहीं मरेंगे । तब मुनिवर ने मन में सोचा कि प्रभु राम ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये ही अवतार लिया है ।

दोहा २ लाइन । शब्दार्थ—बहुविधि=अनेक प्रकार । मनोरथ=(मन+अर्थ) मन की इच्छा । बार=देरी । मज्जन=स्नान ।

अर्थ—अनेक प्रकार के मनोरथ करते हुये (विश्वामित्र जी को) जाते देर नहीं लगी। और वे सरयू के जल में स्नान करके राजा के दरबार में गये।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—आगमन=आना। विप्र समाज=ब्राह्मणों का समूह। सनमानी=आदर किया। निज=अपनी। आनी=लाकर। राऊ=राजा। काऊ=कहीं। लाउब=लगाओ। बारा=देरी।

अर्थ—जब राजा दशरथ ने मुनि जी का आना सुना तो ब्राह्मणों के समूह सहित मिलने गये। दंडवत प्रणाम करके मुनि का आदर किया और उनको लाकर अपनी आसन पर बिठाला। तब मन में प्रसन्न होकर राजा ने ये वचन कहे! हे मुनि! ऐसी कृपा आपने कभी नहीं की, किस कारण आपका शुभागमन हुआ है मुझे कहिये। मैं उसे पूर्ण करने में विलंब न लगाऊंगा।

चौपाई चार लाइन। शब्दार्थ—असुर समूह=राक्षसो का झुण्ड। सतावहिं=कष्ट देते हैं। मोहिं=मुझको। जाचन=मांगने। तोहि=तुमको। अनुज=छोटा भाई। बध=मार डालना। सनाथा=तृप्त, सन्तुष्ट। आन=दूसरे।

अर्थ—मुनि ने कहा कि हे राजा राक्षसो के दल मुझे सताते हैं। मै आपसे मांगने आया हूँ। छोटे भाई के साथ श्री रघुनाथ जी को मुझे दीजिए। जिससे राक्षसों का वध हो और मैं सन्तुष्ट हो जाऊं। राजा दशरथ ने बड़े आदर के साथ दोनो पुत्रो को बुलाया। और हृदय से लगाकर अनेक प्रकार के उपदेश दिए। और कहा हे मुनि! दोनो पुत्र मेरे प्राणो के स्वामी हैं। अब आपही इनके पिता हैं। और कोई नहीं।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—ऋषि=मुनि । जननि=माता। भवन=महल। पद=चरण। शीस=माथा।

अर्थ—राजा ने बहुत प्रकार के आशीर्वाद देकर मुनि को पुत्र सौप दिये। प्रभु श्री रामजी माता के महल में गये। और चरणो में सिर नवा कर चले।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—ताड़का=एक राक्षसी (मारीच की बहिन) धाई=दौड़ी। निज पद=अपने चरण याने स्वर्ग। सन=से। निर्भय=निडर। झारी=सम्पूर्ण। मख=यज्ञ। रखवारी=निगरानी।

(अ) जाते हुए ही मुनि ने श्री राम जी को ताड़का को बतलाया, ताड़का सुनते ही क्रोधित होकर दौड़ी। प्रभु ने एक ही बाण से उसके प्राण ले लिये। और दीन जानकर उसे परम पद दिया। सवेरे ही श्री रघुनाथ जी ने मुनि से कहा कि आप जाकर निडर होकर यज्ञ कीजिये। फिर सब मुनि मण्डली हवन करने लगे। और भगवान स्वयं यज्ञ की रख वाली पर रहे।

चौपाई ४ लाइन शब्दार्थ—कोही=क्रोधी। द्रोही=दुश्मन। फर=नोक, गांसी। सत=सौ। योजन=जोजन, जो ४०० कोस का होता है। पार=दूसरी ओर। पुनि=फिर। दिवस=दिन। पावक शर=अग्नि बाण।

अर्थ—(वेद ध्वनि सुनते ही) मुनियों से द्रोह करने वाला क्रोधी राक्षस मारीच अपने सहायको को लेकर दौड़ा। श्रीरामजी ने उसे बिना गांसी का एक बाण मार दिया। जिससे वह सौ योजन (चार सौ कोस) समुद्र के उस पार जाकर गिरा। फिर उन्होंने अग्नि बाण से सुबाहु को जला दिया,

छोटे भाई। लक्ष्मण जी ने राक्षसी सेना का नाश किया। फिर कुछ दिनों तक श्री राम लक्ष्मण वहीं आश्रम में रहे। और ब्राह्मणों पर दया करते रहे।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—धनुष यज्ञ=राजा जनक ने अपनी कन्या सीता जी के विवाह के लिये स्वयंवर रचा था। जो कोई शंकर जी के धनुष को उठा लेगा उसे ही सीता जी अपना वर चुनेंगी। वह धनुष बहुत ही वजन दार था। परन्तु सीताजी ने एक बार उस धनुष को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख दिया था। जग पावनि=संसार को पवित्र करने वाली। सुरसरि=गंगा। महि=पृथ्वी। सुवन=पुत्र।

अर्थ—मुनियों ने उन्हें आदर के साथ समझाकर कहा कि हे प्रभु जाकर एक चरित्र देखिये। धनुष यज्ञ का नाम सुन-कर रघुवश शिरोमणि श्री राम जी प्रसन्न होकर विश्वामित्र जी के साथ चले। श्री राम जी और लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र जी के साथ चले और वहां गये जहां संसार को पवित्र करने वाली गंगा जी बहती थी। विश्वामित्र ने वह सब कथा सुनाई जिस प्रकार गंगाजी पृथ्वी पर आई।

चौपाई ३ लाइन शब्दार्थ—वृन्द=समूह। विदेह= जनक। नियराया=पास। रम्यता = सुन्दरता। विशेषी= अधिक।

अर्थ—तब प्रभु श्री राम जी ने ऋषियों के सहित स्मरण किया। और ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार का दान पाया। फिर श्री राम जी प्रसन्न होकर मुनियो के साथ चले और शीघ्र ही जनकपुर के निकट आ गये। रामजी ने नगर की सुन्दरता देखी। तो वे अपने भाई के सहित बहुत प्रसन्न हुए।

दोहा शब्दार्थ—सुमन = फूल । वाटिका=बगीचा । बागवन=फुलवारी उपवन। विपुल=बहुत। विहग=पक्षी। सुपल्लवित=सुन्दर पत्तो से हरे भरे।

अर्थ—नगर के चारों ओर फुलवारियां, बाग, और उपवन थे। जिनमे बहुत से पक्षियों का निवास स्थान था। तथा जो फूलते फलते और सुन्दर पत्तो से नगरी के चहुँओर शोभा पा रहे थे।

चौपाई ४ लाइन शब्दार्थ—गुरु आयुप=गुरु आज्ञा। प्रसून=फूल। वर=श्रेष्ट। विटप=वृक्ष। बरन बरन=रंग बिरंगे। बर बेल=उत्तम लताएं। बिताना=छाई हुई। पल्लव=पत्ते। सुररूख=कल्पवृक्ष।

अर्थ—समय जानकर गुरू की आज्ञा पाकर दोनों भाई फूल लेने को चले। उन्होने जाकर राजा जनक का सुन्दर बाग देखा। जहां बसंत ऋतु का आनंद बरस रहा था। बाग मे नाना प्रकार के मनोहर वृक्ष लगे थे। और रंग बिरंगी सुन्दर लताओ के मण्डप छाये हुए थे। नये नये सुहावने पत्ते, फूल, और फलों से लदे हुए वृक्ष अपनी शोभा से कल्पवृक्ष को भी लज्जित कर रहे थे।

दोहा २ लाइन शब्दार्थ—तड़ाग=तालाब। विलोकि=देखकर। रम्य=सुन्दर।

अर्थ—बाग और तालाब को देखकर प्रभु श्री राम जी भाई के सहित परम प्रसन्न हुए। यह बाग अत्यन्त रमणीय है जो रामजी के लिये बहुत आनंददायक मालूम हुआ।

चौपाई ४ लाइन शब्दार्थ—गिरजा=पारवती। सुभग=सुन्दर। स्यानी=चतुर। बिहाई=छोड़कर।। विलोके=देखे। प्रेम विवश=प्रेम से भरी हुई।

अर्थ—उसी समय सीताजी वहां आईं क्योंकि अभी माता ने उन्हें पारवती जी की पूजन करने को भेजा था) और साथ में सब सुन्दर और चतुर सखियां थीं। जो मनोहर राग के गीत गा रही थी। उनमें से एक सखी सीता जी का साथ छोड़कर फुलवारी देखने गई थी। उसने वहां जाकर दोनों भाइयो को देखा। और प्रेम से विह्वल होकर सीता जी के पास आई।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—तासु=उसकी। दशा=हालत। गात=शरीर। जलु=पानी। कहु=कहा। वेन=वचन।

अर्थ—सखियों ने उसकी दशा देखी कि उसका शरीर गद गद हो गया है। और आंखों में प्रेम का जल भरा है। सबने उससे कोमल वचनों से पूछा कि अपनी इस खुशी का क्या कारण है।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—वय=अवस्था। किशोर=युवा। किमि=किस प्रकार। बखानी=बताऊँ। गिरा=वाणी। अनयन=बिना नेत्र। तासु=उसके। लोचन=नेत्र। अकुलाने=व्याकुल हुए। अग्र=आगे। पुरातनि=पुरानी। लखहिं=देख।

अर्थ—उसने कहा दो राजकुमार बाग देखने आये हैं। उनकी अवस्था किशोर है और वे सब तरह से सुन्दर हैं। एक सांवले हैं। और एक गोरे हैं। मै कैसे उनका बखान करूं क्योकि वाणी को आंख नहीं है और आंख, बिना वाणी के हैं। याने श्री रामजी को आंखो ने देखा था। आंखो मे बोलने की शक्ति नही रहती। इसलिए वह सखी उनकी सुन्दरता का वर्णन करने में असमर्थ रही। बोलने वाली इन्द्री जीभ है परन्तु जीभ

ने कुछ देखा नहीं था। इसलिये जीभ क्या कह सकती थी। सखी के वचन सीता जी को बहुत प्रिय लगे। और दर्शन के लिये उनकी आंखें व्याकुल हो उठीं। वे उसी सखी को आगे करके चलीं। पुरानी प्रीति याने श्री रामजी और सीता के उस जन्म का क्या सम्बन्ध है। इसे कोई नही जानता था। श्री राम जी विष्णु का और सीता जी लक्ष्मी जी का अवतार हैं।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—सुमर=याद कर। चकित= अचम्भित। जनु=मानो। सभीत=डर सहित।

अर्थ—नारद जी के वचनो को स्मरण कर सीता जी के हृदय मे पवित्र प्रेम उत्पन्न हुआ। चकित होकर भयभीत हिरन की बच्ची की तरह सब ओर देखने लगी।

चौपाई ५ लाइन। शब्दार्थ—कंकन=कंगन (हाथ का जेवर) किंकिणि=करधनी। नूपुर=पायजेब। लक्ष्मण सन= लक्ष्मण से। मदन=कामदेव। दुंदभी=नगाड़ा। मशा= इच्छा। विश्वविजय=संसार को जीतना। शशि=चन्द्रमा। चकोरा=एक पक्षी (चकोर) विलोचन=नेत्र। चारु=सुन्दर। अचचल=स्थिर। निमि=पलकों का बन्द न होना। दृगंचल= चंचल आंखें।

अर्थ—कंगन, करधनी और पायजेबो की झंकार सुनकर हृदय में विचार करके श्री रामजी लक्ष्मण से कहते हैं—मानो कामदेव ने नगाड़ा बजा दिया हो। और संसार को जीतने की इच्छा कर रहा हो। यहा पर राम जी को ही विश्व समझो क्योंकि कामदेव राम जी को जीतना चाहता था। श्री रामजी मर्यादा पुरुषोतम तथा संयमी थे। ऐसा कह कर फिर उन्होने फिर उस ओर देखा। तो सीता जी के मुख रूपी चन्द्रमा में उनके नेत्र चकोर पक्षी के समान लग गये। सुन्दर आंखें टक

टकी लगाकर रह गईं मानो निमि ने सकुचा कर पलकों को त्याग दिया हो।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—शुचि=पवित्र। अनुज= छोटे भाई। अनुहार=अनुसार।

अर्थ—अपने हृदय से सीता जी की शोभा का वर्णन कर और अपनी दशा को बिचार कर प्रभु श्री राम जी पवित्र मन से छोटे भाई से समय के अनुकूल वचन बोले।

चौपाई २ लाइन। शब्दार्थ—तात=भाई। तनया= पुत्री। गौरि=पार्वती।

अर्थ—हे भाई यह वही जनक जी की कन्या है, जिनके लिये धनुप यज्ञ हो रहा है। इनको, पार्वती जी की पूजा के लिये सखिया लेकर आई हैं। और ये फुलवारी को प्रकाशित करती फिर रही हैं।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ — बतकही = बातचीत। सरोज=कमल। मकरद=पराग। मधुप=भौरा। इव=इस प्रकार।

अर्थ—श्री रामजी छोटे भाई से बात करते हैं पर उनका मन सीता जी के रूप से लुभाया हुआ है। वह (मन) उनके (सीता जी) मुखरूपी कमल के छवि रूपी पराग का भौंरे की तरह रस पान कर रहा है।

(पृष्ठ २०) चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—नृपकिशोर= राज कुमार। मनचीता=मन के चाहने वाले। सित=श्वेत। श्रेणी=पंक्ति। जनु=मानो। निधि=खजाना।

अर्थ—सीता जी चकित होकर चारो ओर देखती है। कि मनके चाहने वाले राजकुमार कहां गये? हरिणी के बच्चे

के समान आंखों वाली सीता जी जहां देखतीं थी वहां मानो श्वेत कमलों की पाति बरस जाती थी ?

उसी समय सखियों ने लता की ओट से सुन्दर सांवले और गोरे दो राजकुमारों को दिखाया। उनका रूप देख कर सीता जी की आखें ललचने लगी। मानो वे अपना धन (खजाने) को पहिचान कर प्रसन्न हुई हो।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—छवि=शोभा, सुन्दरता। परिहरि=छोड़कर। निमेखे=बन्द होना। भोरी=शिथिल। उर=हृदय। आनी=लाई। कपाट=दरवाजा।

अर्थ—श्री रामजी की छवि देखकर आंखें थक गईं और पलकों ने भी बन्द होना छोड़ दिया। अत्यन्त प्रेम के कारण देह की सुधि न रही। और वह रामजी को इस तरह देखने लगी। मानो चकोरी शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा को देख रही हो। फिर आंखों के द्वार को श्री रामजी के हृदय से लाकर चतुर सीताजी ने पलक रूपी किवाड़ बन्द कर लिये। जब सखियों ने सीताजी को प्रेम के वश मे जाना। तो मन को संकोच हुआ। पर वे कुछ कह नही सकती थी।

दोहा ६ लाइन। शब्दार्थ—जनु=मानों। जुग=जोड़ा। विमल=स्वच्छ। विधु=चन्द्रमा। जलद=मेघ। पाल=परदा बिलगाय=दूर कर। केहरी=सिंह। कटि=कमर। पट=वस्त्र पीत=पीले। सुषमा=आनन्द दायक। भानु=सूर्य। भूषणहि=गहने को। अपान=अपना। सतानंद=जनक जी के प्रोहित का नाम। पहिं=पास। पठवा=भेजा।

अर्थ—उसी समय दोनों भाई लता भवन से प्रगट हो गये। मानो दो निर्मल चन्द्रमा काले बादलों के परदे को फाड़ कर निकल आये हों। सिंह जैसा कमर में पीताम्बर धारण

किये हुए सुन्दरता और शील के निधान सूर्य कुल के भूपण श्री राम जी को देखकर सखियां अपनी सुधबुध भूल गई। प्रभु राम जी सतानद के चरणो की वन्दना कर के गुरु जी के पास जाकर बैठे। तब मुनि ने कहा। हे तात चलो राजा जनक ने बुलाया है।

चौपाई ३ लाइन। शब्दार्थ—ईश=परमात्मा। काहियो=किसको। भाजन=पात्र, कृपा। जा रर=जिसपर। मखशाला=यज्ञ भूमि।

अर्थ—वहां जाकर सीताजी का स्वयम्बर देखो। ईश्वर किसको बड़ाई देता है लक्ष्मण जी ने कहा—हे नाथ! आपकी जिस पर कृपा होगी वही यश का पात्र होगा। फिर कृपालु रामजी मुनियों के दल के साथ धनुप यज्ञ शाला देखने को चले।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—कुंजर=हाथी। मणि=मणि। कलित=शोभा। उरन्ह=हृदय। वृषभ=बैल। ठवनि=चाल। बलनिधि=बलवान (शक्ति शाली)

अर्थ—उनके गले में सुन्दर राज मुक्ता के कठे और हृदय में तुलसी की मालाएं शोभा दे रही थीं। उनके बैलो के समान उठे हुए कधे, सिंह की सी चाल, एवं शक्ति शाली लम्बी भुजाएं थी।

(पृष्ठ २१) चौपाई ५ लाइन। शब्दार्थ—तूणीर=तरकस कर=हाथ। शर=बाण। वाम=बाये। वर=श्रेष्ठ। उपवीत=जनेऊ। मंजु=सुन्दर। अवनि=पृथ्वी।

अर्थ—कमर मे पीताम्बर पहिने और तरकस बांधे हाथों मे बाण और सुन्दर बायें कन्धे पर धनुप एवं पीले जनेऊ शोभा-

यमान थे। सिर से पैर तक उनपर बड़ी सुन्दरता छाई हुई थी। उन्हे देख कर सब लोग बहुत सुखी हुए। सबकी आंखें एक तरफ हो गई जो हटाने पर भी नहीं हटती थीं। जनक जी दोनों भाइयो को देखकर प्रसन्न हुये। और जाकर मुनि के चरणों को पकड़ लिया। और विन्ती करके अपनी सारी कथा सुनाकर सम्पूर्ण रग भूमि दिखलाई।

दोहा ४। लाइन । शब्दार्थ—विषद=स्वच्छ, उज्वल। विशाल=बड़ा। महिपाल=राजा।

अर्थ—सब मन्चो से अधिक सुन्दर, उज्वल और विशाल जो एक मच था। उसी पर राजा ने मुनि के साथ दोनो भाइयो को बैठाया। उस समय सुन्दर अवसर जानकर जनक जी ने सीता जी को बुला भेजा। सब चतुर और सुन्दर सखियां उन्हे आदर के साथ लिवाकर चली।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—बखानी=वर्णन करना। जगदम्बा=संसार की माता। लघु=छोटे। प्राकृतिक=स्वाभाविक। अनुरागी=प्रेम करने वाली सुन्दर। कुकवि=खराब कविता करने वाले। अयश=अपयश। लेई=लेवो। ज्यों=जिससे। पटतरिय=उपमा। तीय=स्त्री। युवति=जवान स्त्री। कमनीय=कामनी सुन्दर स्त्री।

अर्थ—सीता जी की शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वे जगत की माता और रूप एवं गुणो से भरी पूरी हैं। मुझे सभी उपमाएं तुच्छ लगती है। क्योकि वे ससारी स्त्रियो के वर्णन में आ चुकी है। सीताजी के वर्णन मे उन उपमाओं को लेकर कौन अनर्गल कवि कहाकर अपयश का भागी हो? यदि सीताजी की उपमा अन्य स्त्रियो से की जाय तो जगत में ऐसी सुन्दरी तरुणी कौन है।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—गिरा=सरस्वती। मुखर=विशेष वक्ता। तनु=शरीर। अर्धभवानी=पार्वती। रति=कामदेव की स्त्री। अतन=बिना शरीर। विष=जहर। वारुणी=शराव। बंधु=भाई। रमा=लक्ष्मी। वैदेहीं=राजा विदेह की कन्या (सीता जी)। ज्यो=जिस। छवि=शोभा। सुधा=अमृत। पयोनिधि=समुद्र। परम=अत्यन्त। रजु=रस्सी। मदिर=मदरा चल (पर्वत) शिगारु=शृगार। मथै=मथना, माना। पानि=हाथ। पंकज=कमल। निज=अपने। मारू=कामदेव।

अर्थ—सरस्वती बहुत बोलने वाली हैं, पारवती जी का शरीर आधा है, रति अपने पति को तनहीन जान कर बहुत दुखित है। सीताजी को लक्ष्मी जी के समान कैसे कहा जाय, जिन्हे विष और मदिरा दोनों भाई प्यारे हैं। यदि अमृत का समुद्र शोभायमान हो और अत्यन्त सुन्दर कच्छप ही शोभा की रस्सी हो। शृंगार रस का मन्दराचल हो और कामदेव अपने कर कमलो से मथन करें।

टिप्पणीः—सरस्वती—सरस्वती जी का स्थान जिह्वा है सरस्वती के सेवक भी अपनी जिह्वा के द्वारा संसार में प्रचार करते हैं। क्योकि वे ही अधिक बोल सकते हैं।

पारवती—शकर महादेव जी ने पारवती जी के आधे शरीर को अपने मे लीन कर दिया है इसलिये पारवती जी का शरीर आधा माना जाता है।

रति-ये कामदेव-की स्त्री हैं। एक तारक नाम राक्षस जो कि बहुत अत्याचारी था वह किसी से नहीं मारा जा सकता था, ब्रह्माजी ने बताया कि शंकर जी के वीर्य से ही उत्पन्न

पुत्र इसे जीत सकता है। यदि शंकर भगवान हिमाचल की पुत्री से शादी कर लें तो पुत्र उत्पन्न होने पर तारक मारा जा सकेगा। उस समय शंकर जी पूर्ण समाधि में थे। उनको विचलित करने के लिये कामदेव को भेजा गया उसने अपनी पूर्ण शक्तियों से समाधि से शंकर जी को गिराना चाहा, खीजकर शंकर जी ने अपने तीसरे नेत्र द्वारा उसे भस्म कर दिया। तब से वह बिना अंग का है।

लक्ष्मी—समुद्र मथने पर उस में चौदह रत्न निकले थे उनमें विष और वारुणी (मदिरा) निकले थे इसलिये विष और शराब लक्ष्मी जी के भाई हैं।

क्षीरसागर-एक बार जब क्षीर सागर का मंथन किया गया था तब भगवान ने कच्छप रूप धारण किया और उसी कच्छप पर पर्वत की मथानी रखी गई. शेष नाग की रस्सी बनाकर एक ओर देवता और दूसरी ओर राक्षस लगाये गये। मथने पर चौदह रत्न निकले थे।

अर्थ—विश्वामित्रजी शुभ मुहुर्त जानकर अत्यन्त स्नेह पूर्णक वचन बोले—हे राम ! उठो और शिवाजी के धनुष को तोड़ो। हे तात राजा जनक के कष्ट को दूर करो। गुरुजी के वचन सुनकर श्री राम जी ने चरणों में सिर नवाया उनके हृदय में हर्ष और शोक कुछ नहीं था।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—उदित=उदय। उदय गिरि= उदयाचल पर्वत। बाल पतंग=बाल सूर्य। विकसे=खिली। सरोज=कमल। भृंग=भौंरे।

अर्थ—उस मंच रूपी उदया चल पर्वत रामचन्द्र रूपी बालसूर्य उदय हुये। तो सब संतरूपी कमल खिल उठे और उनके नेत्र रूपी भौंरे प्रसन्न हो गये।

चौपाई ३ लाइन। शब्दार्थ—विनवति=विनती। जिहि तिहि=जिस तिस। महेश=शंकर जी। अहह=खेद। तात=पिता। दारुण=कठिन। हट=टेक। ठानी=दृढ़ निश्चय।

अर्थ—उस समय सीताजी राम जी को देख कर भय-पूर्ण हृदय से जिस तिसकी विनती करने लगी। वे व्याकुल होकर मन ही मन मनाती थी कि हे महादेव ! हे पारवती। आप प्रसन्न होवें। वे मन में कहने लगी—अहो ! पिताजी आपने कठिन हठ किया है। आपने हठीला पन का कुछ विचार नहीं किया।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—कुलराहु=वज्र। मृदु गात =कोमल शरीर। विधि=ब्रह्मा। सिरस=सरसों। सुमन=फूल। कन=कण। वेधिप=छेदना। लव=पल। निमेष=पल मारने का समय। (३६ निमेष का १ लव)

अर्थ—कहां धनुष, जो बज्र से भी अधिक कठोर है। और कहां कोमल शरीर वाले श्यामले किशोर श्री राम जी हैं। हे विधाता ! किस तरह हृदय में धीरज धरूं। सरसों के फूल के कण से कहीं हीरा छेदा जा सकता है।

दोहा २ लाइन शब्दार्थ—राजत=शोभा देते। लोचन=नेत्र। लोह=चंचल। मनसिज=कामदेवी। मीन=मछली। जनु=मानो। विधु=चन्द्रमा। मंडल=घेरा। डोल=हिलना।

अर्थ—प्रभु राम जी की ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखती हैं। उनके चंचल नैन ऐसे शोभित थे, मानो चन्द्र मंडल के झूले में दो कामदेव रूपी मछलियां खेलती हैं।

चौपाई ३ लाइन शब्दार्थ—अलिन=भौंरा। निशा=रात। अवलोकी=देखी। प्रतीत=विश्वास, भरोसा। पन=प्रण सरोज=कमल।

अर्थ—वाणी रूपी भौंरा उनके मुख रूपी कमल में रुक गया। लज्जा रूपी रात्रि देखकर प्रगट नहीं हुई। बड़ी व्याकुलता जानकर बहुत सकुची। फिर धीरज धरकर वे हृदय में विश्वास लाई कि यदि तन, मन और वचन से मेरा प्रण सच्चा है। और यदि मेरा चित्त रघुनाथ जी के चरण कमलों में लगा है तो सबके हृदय में बसने वाले भगवान मुझे रघुनाथ जी की दासी करेंगे।

चौपाई ६ लाइन। शब्दार्थ—तकेऊ=घूर कर देखना। चितव=देखा। व्यालहिं=सर्प। लाघव=शीघ्रता। दमकेऊ=चमकना। दामिनि=बिजली। जिम=जिस प्रकार। पुनि=फिर। नभ=आकाश। सम=समान। लखा=देखना।

भरेऊ=भर गया। भुवन=लोक। घोर=कठिन। कठोरा=जोर की कर्कश आवाज।

अर्थ—प्रभु श्री राम जी की ओर देखकर सीता जी ने प्रेम का जो प्रण ठान लिया उसे दयासागर रामचन्द्रजी ने पूर्ण रूप से जान लिया। उन्होंने सीता जी को देखकर धनुष को इस तरह घूर कर देखा जैसे गरुड़ सर्प की ओर देखता है। मन ही मन गुरुजी को प्रणाम किया। और उन्होंने शीघ्रता से धनुष को उठा लिया। जब धनुष हाथ में लिया तो बिजली की तरह दमका और फिर वह आकाश मे गोलकार हो गया। उसे लेते, चढ़ाते और जोर से खींचते किसी ने नहीं देख पाया। यद्यपि सब खड़े देखते थे। उसी क्षण रामजी ने धनुष को बीच से तोड़ डाला जिसकी कड़ी आवाज से संसार गूंज उठा।

छन्द ४ लाइन। शब्दार्थ—रव=शब्द। रवि=सूर्य। बाजी=घोड़ा। तजि=छोड़कर। मारग=रास्ता। चिक्करहिं=चिघारही। दिग्गज=दिशाएं। महि=पृथ्वी। अहि=शेपनाग। कोल=बाराह। कूरम=कच्छप। कलमली=घबड़ा गये। सुर=देवता। असुर=राक्षस। सकल=सब। कोदण्ड=धनुष। खण्डेऊ=तोड़ा। उचारही=बोलते हैं।

अर्थ—घोर कठोर शब्द से भुवन भर गये, सूर्य के घोड़ो ने रास्ता छोड़ दिया। दिशाओं के हाथी चिघारने लगे। पृथ्वी डोलने लगी। शेषनाग, बाराह, एवम् कच्छप घबड़ा गये। देवता, दैत्य और मुनि कानो पर हाथ रखकर सब व्याकुल होकर सोचने लगे। हे तुलसी! रामजी ने धनुष तोड़ डाला अतः रामजी की जय ऐसे बचन कह रहे हैं।

सोरठा २ लाइन शब्दार्थ—चाप=धनुष । बाहुबल=भुजाओ की ताक़त । बूड़े=डूबे । सकल=सब । प्रथमहिं=पहिले।

अर्थ—रघुनाथ जी की भुजाओं का बल समुद्र है उस पर जो समाज पहिले मोह के वश होकर चढ़ा था वह सब डूब गया । सारांश यह है कि जो राजा लोग श्री रामजी के धनुष तोड़ने के पहिले धनुप उठाने की इच्छा से धनुष के पास उसे उठाने आये थे । और उनसे धनुष नहीं उठा याने रामचन्द्रजी की शक्ति के आगे परास्त हो गये । उसी को कवि ने डूबना बतलाया है ।

दोहा २ लाइन शब्दार्थ—मोह=ममता । सूल=पीड़ा ।

अर्थ—देवताओं ने नगाड़े बजाकर प्रभु श्री रामचन्द्रजी पर फूलो की बरसा की । जनकपुर के सब स्त्री पुरुष प्रसन्न हुए । और मोह के कारण उन्हे जो पीड़ा हो रही थी मिट गई ।

चौपाई ४ लाइन शब्दार्थ—कौशकहिं=विश्वामित्र । कृतकृत्य=कृतार्थ । उचित=ठीक । नरनाथ=राजा । प्रवीण=चतुर ।

अर्थ—जनकजी ने विश्वामित्र को प्रणाम किया और कहा कि आपके ही आशीर्वाद से श्रीरामजी ने धनुष को तोड़ा है । दोनों भाइयों ने मुझे कृतार्थ कर दिया । हे गुसाईं अब जो उचित हो कहिये । मुनि ने कहा—हे चतुर राजन ! सुनो, विवाह तो धनुप के आधीन था, और धनुप के टूटते ही विवाह हो गया । यह देवता, मनुष्य और नाग सबको मालूम है ।

दोहा २ लाइन । शब्दार्थ—यद्यपि=फिरभी । जथा=जैसी । वंश=कुल । व्यवहार=रीति । विदित=जाहिर ।

अर्थ—फिर भी आप जाकर अब जैसी कुल की रीति हो, ब्राह्मण, कुल के वृद्धे और गुरुजी से पूछकर वेदानुसार कार्य कीजिए।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—उछाहू=उत्साह। अहिनाऊ =शेषनाग। मोद=प्रसन्न। रिद्ध-सिद्ध=सिद्धिया। उमंग =उत्साहित होकर। नव= नये २। मंगल=शुभकारक।

अर्थ—जब से श्रीरामचन्द्रजी विवाह करके घर आये है, तब से नित नये शुभ कार्य और आनन्द की बधाई बजती रही, प्रभु श्री रामचन्द्रजी के विवाह में जैसा उत्साह हुआ उसका वर्णन सरस्वती और सौ जिव्हा वाले शेषनाग भी वर्णन नहीं कर सकते। जबसे श्रीरामजी विवाह करके अपने भवन में आये है, तबसे नित नये उत्साह होते हैं। उस सुखरूपी बरसे हुए जल को लेकर ऋद्धि सिद्धि भी सम्पत्ति रूपी नदियां उमड़ उमड़कर अयोध्या रूपी समुद्र से आकर मिल गई अर्थात् अयोध्या पुरी सकल सम्पदाओं का सागर बन गया।

चौपाई ५ लाइन। शब्दार्थ—राजसभा=राजदरबार। बिराजा=सुशोभित। सुकृति=पूर्ण पुण्य। नरनाहू=राजा दशरथ। सुजसु=सुकीर्ति। राय=श्रेष्ठ राजा। सुभाय= साधारण। मुकुर=आइना, दर्पण। बदन=मुंह। विलाकि= देखकर। सम=ठीक, बराबर। श्रवण समीप=कान के पास सित=श्वेत। केशा=बाल। जरठ=वृद्ध। पन=अवस्था। जुवराज=युवराज, होने वाला राजा। लाहु=लाभ। लेहु॥ पाओ।

अर्थ—एक समय रघुकुल में श्रेष्ठ दशरथ जी अपनी मण्डली सहित राजदर्बार मे विराजमान थे। वहां सम्पूर्ण पुण्यो

की मूर्ति महाराज दशरथ को रामचन्द्रजी की कीर्ति सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। महाराजा ने मामूली तौर से हाथ में दर्पण लिया और उसमें अपना मुंह देखकर मुकुट भी सुधारा और यह देखा कि कानो के पास के बाल सफेद हो गये हैं। वे मानो महाराज को ऐसा उपदेश दे रहे हैं कि अब आपका चौथा पन याने बुढ़ापा आ गया है। हे राजन! रामचन्द्रजी को युवराज पद देकर अपने जीवन का लाभ क्यों नहीं उठाते। याने सफल क्यो नहीं करते।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—विचारु=भावना। सुअवसर=अच्छा मुहूर्त।

अर्थ—राजा दशरथ ने इस विचार को मन में लाकर शुभ दिन और शुभ घड़ी पाकर प्रेम से पुलकायमान शरीर और मन से खुश होते हुये गुरु (वशिष्ठ) जी के पास जाकर उन्हे अपना अभिप्राय सुनाया।

चौपाई ५ लाइन। शब्दार्थ—भुआल=राजा। नायक=श्रेष्ठ। सब विधि=सब प्रकार। अछत=जीतेजी। यहु=यह लहहिं=पावें। लोचन लाहु=नेत्रों का आनन्द। मूल=जड़ मुख्य।

अर्थ—राजा ने कहा—हे मुनिराज! सुनिये, अब श्री रामचन्दजी सब तरह से सब लायक हो गये।

हे नाथ! रामचन्द्र को युवराज कर देना चाहिये। यदि आप कहिये तो समाज इकट्ठी की जाय। मेरे जीते जी यह उत्सव हो जाय और सब लोग अपने नेत्रों से सब आनन्द देख लें। इतना हो जाय, तो फिर शरीर रहे अथवा चला जाय, जिससे मुझे उसका पछतावा न रह जाय। दशरथ जी की सुहावनी और आनन्द मय मुख्य वात सुनकर मुनि को बहुत अच्छी लगी।

दोहा २ लाइन । वेगि=जल्दी । विलंब=देरी । साजिय =सजाइये ।

अर्थ—हे राजन । जल्दी ही सब समाज को सजाइये, देर न कीजिये, जब श्री रामजी युवराज हो जांय, वही दिन शुभ मगल मय है ।

चौपाई ३ लाइन । शब्दार्थ—मुदित=प्रसन्न । महीपति= राजा । मदिर=महल । सचिव=मन्त्री । शीश=सिर, मस्तक जयजीव=प्रणाम का शब्द, प्रमुदित=बहुत प्रसन्न ।

अर्थ—राजा प्रसन्नता पूर्वक महल मे आये, उन्होने सेवकों तथा सुमत्र नामक मत्री को बुलवाया, उन लोगो ने 'जय जीव' कह कर सिर झुकाया । फिर राजा ने उत्तम मगल कारक वचन उन्हें सुनाये । हे मत्री ! आज गुरु जी ने प्रसन्न चित्त से आज्ञा दी है कि हे राजन ! तुम रामचन्द्र को युवराज का पद दे दो ।

दोहा २ लाईन । शब्दार्थ—आयुप=आज्ञा ।जोई जोई= वही वही । अभिषेक=तिलक । सोई=वही ।

अर्थ—राजा ने कहा कि रामचन्द्र का राज्यभिषेक करने के लिये मुनिराज (वशिष्ठ) की जो जो आज्ञा हो वह वह जल्दी करो ।

चौपाई ४ लाइन । शब्दार्थ—कुबरी=रानी कैकेयी की दासी मथरा नाम की । कबुली=स्वीकृति । कैकेरी=कैकेयी । कपट=छल, उरपाहन=पत्थर रूपी हृदय । टेई=धार बनाई । लखई=देखना । हरित=हरा । तृण=घास । बलि पशु= बलदान किये जाने वाला जानवर; प्रायः बकरा । मृदु= कोमल । मधु=शहद । माहुर=जहर । घोरी=मिलाना ।

चेरी = दासी। सुधि = खबर। अहिह = है। स्वामिन = मालकिन
मोहिपाहिं = मुझको।

अर्थ—कुबरी मथरा ने कैकेई को (अपनी कही हुई बात स्वीकार करा कर) अपनी कपट रूपी छुरी उनके हृदय रूपी पत्थर पर घिस कर तेज कर ली। रानी अपने समीप के दुख को भी उसी तरह नही देखती है जैसे बलिदान का पशु बलि होने के पहिले हरी हरी घास चरता है। कुबड़ी की बात सुनने से तो मीठी है पर उसका अन्त ऐसा कठोर है मानों विष घोल कर शहद में रही है। उसने कहा, हे-स्वामिन! तुमको वह बात याद है कि तुमने ही वह कथा मुझ से कही थी।

टिप्पणी नं० १ समीप का दुखः—इसका आशय है कि कैकेयी को यहभी ज्ञान न रहा कि श्री राम के वन जाने पर राजा दशरथ अपने प्राण त्याग देंगे और मै विधवा हो जाऊंगी।

टिप्पणी नं० २-कथा मोहि गहीः—इस कथा का सार यह है कि दक्षिण के दण्डकारण्य में वैजयन्ती नगर में तिमिध्वज राजा के राज्य काल में सम्वरासुर के साथ इन्द्र का युद्ध हुआ। इन्द्र की सहायता को राजा दशरथ रानी कैकई के साथ युद्ध में गये। वहा रथ के पहिये की कील निकल जाने पर रानी ने अपनी अगुली उसके छेद में लगादी थी कि जिससे राजा के प्राण बच गये और उसी समय राजा ने वरदान मांगने को कहा कि जब मुझे आवश्यकता होगी दो वरदान मांग लूगी।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—थाती = धरोहर। भुलावहु ठण्डी करो। सवति = सौत। हुलाप = प्रसन्न। सपथ = सौगंध। अकाजु = हानि। निशि = रात।

अर्थ—तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर हैं, आज उन्हें मांगकर अपनी छाती ठण्डी करो। पहले से पुत्र (भरत) को राजगद्दी और दूसरे से राम को बनवास, ऐसा करके सौत की सारी प्रसन्नता छीन लो। राजा जब रामजी की सौगन्ध खा लेवें तब वरदान मागना जिससे वे अपने वचनों से न टलने पावें। यदि आज की रात बीत गई तो काम बिगड़ जायगा। मेरी यह बात अपने प्राणों से भी प्यारी जानना।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—कुघात=बुरा प्रहार। पातकिन=पापनी। कोपगृह=राजाओं का वह महल जिसमें रिसा कर बैठते थे। संभारहु=ठीक करना। सहसा=एकाएक। जनि मत। पत्याहु=विश्वास करो।

अर्थ—पापिन ने बहुत ही बुरा घात करके कहा कि कोप भवन में जाओ और वहां सावधान होकर सब काम बनाओ। एकाएक विश्वास मत कर लेना।

पृष्ठ २५ दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—समउ=समय। गेह महल। गवनु=गये। निठुरता=कठोर। जनु=मानो।

अर्थ—संध्या काल में राजा दशरथ आनंद पूर्वक रानी कैकई के महलों में पधारे। यह जान पड़ता है कि मानो प्रेम ने शरीर धारण करके कठोरता के पास गमन किया हो।

भावार्थ—यहां पर राजा दशरथ के शरीर को प्रेम से पूरित तथा कैकई को कठोरता से परिपूर्ण संकेत किया है।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—आगहु=आगे। प्रिया=प्यारी पत्नी। पहि=पास। दारुन=कठिन। सयन=सोना। पट=वस्त्र। मोह=मोहे। भूषण=गहना। रिसानी=नाराज।

अर्थ—महल में पहुँचते ही राजा यह सुनकर सहम गये कि—कैकई कोप भवन मे है। भय से उनका पैर आगे न बढ़ता था। राजा डरते हुए प्यारी कैकई के पास गये। उनकी दशा देख कर उनको भारी दुख हुआ। कैकई भूमि पर पड़ी है, मोटे और पुराने कपड़े पहने है तथा शरीर के अनेक प्रकार के आभूषण उतारकर फेंक दिये हैं। राजा ने पास जाकर मीठी वाणी से कहा—हे प्राणो से अधिक प्यारी प्रिया आप किसलिए रुष्ट हुई हो।

चौपाई ५ लाइन। शब्दार्थ—अनहित=बुराई। केई=कौन। दुइ सिर=दो सिर। जम=यमराज। रंकहि=गरीब को। निकासहिं=निकालूं। बरोरु=सुन्दर जांघो वाली स्त्री। आनन=मुख। सर्वस=सब कुछ। परिजन=परिवार, कुटुम्ब। प्रजा=रैयत। बस=आधीन। भामिन=स्त्री।

अर्थ—हे प्यारी तेरी किसने बुराई की? किसके दो सिर हैं। किसको यमराज लेना चाहता है? बताओ तो किस कंगाल को राजा बनादूं और किस राजा को देश से निकाल दूं। हे सुन्दर जांघो वाली तू मेरा स्वभाव जानती है कि मेरा मन तेरे मुख चन्द्र के लिए चकोर के समान है। हे प्यारी मेरे प्राण, पुत्र और मेरा सब कुछ याने प्रजा और कुटुम्ब सब तेरे बस में हैं। यदि मैं तुमसे कुछ कपट करके कहता हूँ तो हे रानी मुझे रामजी की सौगंध है।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—बिहंसि=प्रसन्नता पूर्वक। भावति=इच्छानुसार। संजोहू=श्रृंगार। गाता=शरीर। घरी कुघरी=समय, कुसमय। जिय=मन। परहरहि=छोड़ो। कुवेष=कुरुपता। भावा=मन के अनुकूल। बधावा=बधाई। सुलोचन=सुन्दर नेत्र वाली (रमणी)। कपट स्नेह=छल भरा

हुआ प्रेम । वहोरी=फिर । मुंहमरोरी=मुंह की आकृति विगाड़ कर।

जो बातें मन के अनुकूल हो उसे हंस कर मांग ले। और अपने सुन्दर शरीर को अभूषणो से सजा ले। समय और कुसमय का मन में ख्याल कर देखो। और हे प्यारी इस बुरे भेष को जल्द त्याग दो। हे रानी तेरा मन चाहा हो गया, देख अयोध्या के घर घर आनन्द की बधाइयां बज रही हैं। कल मैं रामजी को युवराज पद दूंगा। इसलिये हे सुन्दर आखो वाली आप भी मंगलीक सामग्री से अपने को सजावो। कैकेयी ने फिर कपट से पूर्ण स्नेह बढ़ाया। और आंखे और मुंह मटकाकर हंसकर बोली।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—मांगुवै=मांगने पर। वरदान=मांगी हुई वस्तु देना। तेऊ=वह।

अर्थ—हे पति देव आप मांगने को तो कहते है परन्तु मांगने पर भी कभी देते लेते नहीं हो। आपने दो वरदान देने को कहा था उनके भी पाने मे (मुझे) शक है।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—मरम=हृदय का भेद। कोहाव=कहना। थाती=धरोहर। काउ=कभी। भोरे=सरल, सीधा, भोला। वरु=चाहे।

अर्थ—राजा हंसकर कहने लगे कि मैं सब बात जान गया। तुमको तो रूठना ही बहुत प्यारा है। धरोहर रखकर वरदानो का तुमने कभी नहीं मागा और भोले स्वभाव के कारण मै भी भूल गया। हमको झूठा दोष मत लगाओ। दो के चार वरदान क्यों नहीं मांगलेती।? रघुकुल में सदा से यह रीति चली आई है कि चाहे प्राण भले ही चले जायं, परन्तु कहे हुए वचन नहीं फेरे जा सके।

पृष्ठ २६ चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—पातक=पाप। पुंजा=समूह। गिरि=पर्वत। कोटिक=करोड़ों। गुंजा=घुगंची। ढिटाई=पक्की। कुमति=बुरे विचार। कुविहंग=दुष्ट पक्षी (बाज)। कलह=आँखों की टोपी, पर्दा या ढक्कन। भावत=मन को अच्छा लगने वाला। टीका=राजगद्दी। पुरवहु=पूरा करो।

अर्थ—झूठ के समान सब पापों का समूह भी नहीं होता। क्या करोड़ो घुगंची मिलकर एक पहाड़ के समान हो सक्ती है? इस प्रकार बात को पक्की करके वह बुद्धिहीन केकई हंसकर बोली। मानो दुष्ट बुद्धि रूपी बाज पक्षी ने अपनी आँखों का पर्दा खोल दिया हो। हे प्राण प्रिय! सुनिये मन को अच्छा लगने वाला एक बर यह दीजिए कि भरत को राजतिलक हो और दूसरा हाथ जोड़कर यह बर मांगती हूँ कि हे नाथ मेरी मनोकामना पूरी कीजिए।

चौपाई ३ लाइन। शब्दार्थ—तापस भेप=तपस्वी के रूप में। विसेष=भोग विलास। उदासी=विरक्त। भूप=राजा। शोक=दुख। शशि=चन्द्रमा। विकल=दुखी। जिमि=जिस प्रकार। कोकू=चकवा। सहमि=घबड़ाये। सचान=बटेर। जावा=बाज।

अर्थ—तपस्वी के वेप में समस्त भोगों से विरक्त होकर श्री रामजी चौदह साल वनवासी होकर रहें। इन कोमल वचनों को सुनकर राजा के हृदय में बड़ा दुःख हुआ। जैसे चन्द्रमा के निकलते ही चकवा व्याकुल हो जाता है। राजा सहम गये, उनसे कुछ कहते नहीं बना। मानो बटेरों के वन में बाज ने छापा मारा हो।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—कौन=किस। अवसर=समय। भयउ=हुआ। जोग=योग। सिद्ध=सफल, पूर्ण। जिमि=जिस प्रकार। जती=यती, एक प्रकार के सन्यासी। अविज्ञ=अज्ञान।

अर्थ—कैसे अवसर पर क्या हो गया, स्त्री का विश्वास जाता रहा, यह तो वैसा ही हुआ जैसे योग का फल मिलने के समय अज्ञान सती का नाश कर देता है।

चौपाई १ लाइन। शब्दार्थ—विलपत=विलाप, रुदन। या रोते हुए बात करना। भिनुसारा=प्रातःकाल। बीणा=सितार। वेणु=बांसरी।

अर्थ—राजा को विलाप करते भोर हो गया और द्वार पर बीणा बांसरी और शंख ध्वनि होने लगी।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—अजहुं=अभी तक। बैशेखि=खास।

अर्थ—द्वार पर सेवको और मंत्रियों की भीड़ हो गई, सूर्य को उदय हुआ देख सब कहने लगे कि अयोध्यापति राजा दशरथ अब तक नहीं जागे। इसका विशेष कारण क्या है।

चौपाई ४ लाइन शब्दार्थ=रजायसु=राजा सा। रावर=राजा। भयावन=डरावना पन। जय जीव=प्रणाम। गति=दशा सचिव=मन्त्री। सभीत=भय के कारण। अशुभ=अमंगल छूंछी=रहित।

अर्थ—हे सुमन्त जाओ; और जाकर राजा को जगाओ और उनकी आज्ञा लेकर कार्य करो तब सुमन्त राजा के पास गये परन्तु महल का डरावना पन देख कर जाते हुये डरते है। सुमन्त प्रणाम करके सिर नवाकर बैठ गये। और राजा की

हालत देखकर उनका हृदय सूख गया। मन्त्री भय के कारण कुछ पूछ नहीं सकते थे। यह देखकर अशुभ के पूर्ण और शुभ में शून्य कैकयी बोली।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—महीश=राजा। जगदीश=परमात्मा। निशि=रात।

अर्थ—राजा को रात को नींद नहीं आई, इसका कारण परमात्मा जाने। पर महाराज ने राम राम रटकर सवेरा कर दिया और कुछ कारण नहीं बताया।

(पृष्ठ २६ २७) चौपाई ५ लाइन। शब्दार्थ—आनहु=लाओ। रुख=इच्छा। लख=देखी। कुचालि=छल। लेखा=समझा। निरख=देखकर। वदन=मुख। रजाई=आज्ञा। रघुकुलदीपहि=श्री रामचन्द्रजी। कुभांति=बुरी तरह। सचिव=मंत्री। बिलखाहि=दुखित।

अर्थ—अतः श्री राम को बुला लाओ। और तब आकर सब समाचार पूछो। श्री रामजी सुमन्त को आते देखा तो पिता के समान समझ कर आदर किया रामजी का मुख देख कर और राजा की आज्ञा कह कर सुमंत रघुवंश के दीपक रामजी को लिवाकर चले। रामजी अस्वाभाविक चाल से मंत्री के साथ जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहां तहां व्याकुल होने लगे।

नोटः—पहलेका आदर्श था कि घर के वृद्ध नौकर को भी पूज्य दृष्टि से देखते थे ऐसा न था कि जैसा वर्तमान में नौकर को नौकर समझते हैं।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—कुसाज=बुरा भेष। नरपति=राजा। गजराज=हाथी।

अर्थ—रघुकुल में मणि के समान रामजी ने जाकर देखा कि महाराज दशरथ अत्यन्त बुरे भेष में हैं जान पड़ता है मानो बूढ़ा हाथियों का राजा सिंहनी को देखकर घबड़ाकर गिर पड़ा हो।

नोटः—यहां पर कैकेयी की उपमा सिंहनी से, तथा महाराज दशरथजी की उपमा बूढ़े हाथियो के राजा से दी गई है।

चौपाई ३ लाइन। शब्दार्थ—करुणा=दयासागर। समउ=समय। तात=पिता। जतन=उपाय। जिहि=जिससे निवारण=दूर।

अर्थ—करुणामय और कोमल स्वभाव श्रीरामजी ने पहिले पहिल वह दुख देखा जो कभी नही सुना था। फिर भी धैर्य रखकर और समय को विचारकर उन्होंने मीठे वचनों से माता कैकेयी से पूछा। हे माता, पिताजी के दुख का कारण मुझ से कहिये। और वह उपाय कीजिये जिससे वह दूर हो—

चौपाई ३ लाइन। येहू=यही। सनेहू=प्रेम। कहेन्हि=कहा। मोहि=मुझको। सुहाना=अच्छा लगा।

अर्थ—कैकई बोली हे राम सुनो सारा कारण यह है कि राजा का तुम पर बहुत प्रेम है। राजा ने मुझे दो वरदान देने को कहे थे सो जो मुझे अच्छे लगे। वह मैंने मांग लिये। परन्तु उसे सुनकर राजा के हृदय को बहुत खेद हुआ है। क्योंकि उनसे संकोच तोड़ा नहीं जाता।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—इत=यहां। उत=वहां संकट=कष्ट। परेहु=पड़ा है। आयसु=आज्ञा। कलेषु=दुख सकहु=संभव हो।

अर्थ—इधर तो पुत्र का स्नेह, उधर वचन, इसी कष्ट में राजा पड़े हैं। यदि तुम में शक्ति हो तो उनकी आज्ञा सिर पर धारण करो। और इस कठिन क्लेश को मिटा दो।

चौपाई ५ लाइन। शब्दार्थ—सबु=पूर्ण। प्रसंग=मौके की बात। निठुराई=दुष्टता। कुल=वंश। भानु=सूर्य। निधान =घर। विगत=अलग। दूषण=दोष। मृदु=कोमल। मजुल= सुन्दर। जनु=मानो। बाग=वाणी। विभूषण=गहना। जननी=माता। भागी=भाग्यवान। अनुरागी=प्रेम करने वाला। तनय=पुत्र। पोषणहारा=पालन करने वाला। दुर्लभ= कठिन।

अर्थ—कैकयी श्रीरामजी को सब प्रसंग सुना कर ऐसी बैठ गई मानो निठुरता देह धारण करके बैठ गई हो। सूर्य वंश सूर्य श्रीरामजी मन में मुसकरा रहे हैं। क्योकि वे स्वभाव से ही आनन्द से परिपूर्ण हैं। वे समस्त दोषो से रहित कोमल सुन्दर वचन बोले। मानो वे वाणी के आभूषण हों अर्थात बहुत ही मृदु भाषी हैं। हे माता! सुनो, वही पुत्र बहुत भाग्य शाली है जो अपने माता और पिता के वचनो में प्रेम करता है। हे जननी माता और पिता को संतोष देने वाला पुत्र सारे संसार में दुर्लभ है।

दोहा २ लाइन। शब्दार्थ—मुनिगण=मुनियो का समूह विसेषि=खास। हित=भलाई। बहुर=फिर। सम्मत=राय, सलाह।

अर्थ—वन में यह विशेष आनन्द है कि मुनियो का मिलना होता है जिससे सब प्रकार से मेरा हित होगा। उस में पिता जी की आज्ञा है और फिर माता तेरी भी सम्मति है।

चौपाई २ लाइन । शब्दार्थ—प्राण प्रिय=प्राणों के समान प्यारे । राजू=राज्य । विधि=ब्रह्मा । सब विधि=सब तरह । मोहि=मेरे । सन्मुख=साम्हने, अच्छे । आजू=आज । काजा=काम । गनिय=गिनना । मूढ़=मूर्ख । समाज= मनुष्यों का समूह ।

अर्थ—भरतजी मुझे प्राण के समान प्यारे हैं । उनको राज्य मिलेगा । अहा आज सब प्रकार से परमात्मा मेरे ऊपर प्रसन्न है । यदि ऐसे कार्य के लिए मैं बन को न जाऊं तो मैं मूर्खों की समाज में प्रथम श्रेणी में गिना जाऊँगा ।

पृष्ठ २८ चौपाई ५ लाइन । शब्दार्थ—वश=अधीन । कछुक=थोड़ा । अनुमानी=अन्दाज । विनीत=नम्र । ढिटाई धृष्टता । छमब=क्षमा करना । अनुचित=अयोग्य । लरकाई= लड़कपन । लघु=छोटी । लागि=लिये । काहू=किसी । मोहि=मुझको । जनावा=जताया । गाता=शरीर ।

अर्थ—श्री रघुनाथजी ने पिताजी को प्रेम के वश में जाना और यह अनुमान किया कि माता कैकई फिर कुछ कहेगी । वे देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके अत्यन्त विनयपूर्ण वचन बोले—हे पिता मैं ढिठाई करके कुछ कहता हूं । यदि अनुचित हो तो लड़कपन समझकर क्षमा कीजिए । अत्यन्त छोटी सी बात के लिये आप इतने दुखी हो रहे हैं । किसी ने मुझसे पहले से कहकर क्यों नहीं बताया । जब आपको देखकर मैंने माताजी से पूछा, तो सब हाल सुनकर मेरा शरीर शीतल हो गया ।

दोहा २ लाइन । शब्दार्थ—मंगल समय=आनन्द के वक्त । सनेह वश=प्रेम के कारण । हरषि हिय=हृदय में प्रसन्न होकर ।

अर्थ—हे पिताजी शुभकार्य के समय प्रेम के वशीभूत होकर जो आप दुख मना रहे हैं, उसे त्याग दीजिए और हृदय से प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिए। ऐसा कहकर प्रभु श्रीरामजी के सब अंग पुलकायमान हो गये।

चौपाई ४ लाइन। शब्दार्थ—जगतीतल=भूपृष्ठ, संसार। तासु=उसका। प्रमोद=आनन्द। करतल=हथेली। सम=बराबर। पालि=पालन कर, शिरोधार्य कर। ऐहूँ= इसलिये। वेगहिं=जल्दी से। रजाई=आज्ञा। बहुर=फिर। पगलागी=चरण छूकर।

अर्थ—इस संसार में उसका जन्म धन्य है कि जिसका चरित्र सुनकर पिता को आनन्द मिले। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारो पदार्थ उसकी मुट्ठी में हैं जिसको अपने माता, पिता प्राणो से भी अधिक प्यारे हैं। मैं आपकी आज्ञा का पालन करके और अपने जन्म का फल पाकर शीघ्र ही लौट आऊँगा। इसलिए शीघ्र ही आज्ञा दीजिए। माता से विदा मांग आऊ, फिर आपके चरण छूकर वन को चला जाऊंगा।

चौपाइ ३ लाइन। शब्दार्थ—गवन=जाना, गये। उतरु=जवाब। व्यापगई=छागई। सुतीछी=नौकीली। बीछी=बिच्छू। छुवत=छीने या स्पर्श करने से। बेलि=लता। विटप=वृक्ष। दवारि=दवांर।

अर्थ—ऐसा कहकर उस समय श्री रामजी चले गये, राजा ने शोक के वश में होने के कारण कुछ उत्तर नहीं दिया। पर यह तीखी बात सारे नगर में इस प्रकार फैल गई जैसे बिच्छू के डंक मारने पर सारे शरीर में विष फैल जाता है। इस हाल को सुनकर सब स्त्री, पुरुष ऐसे व्याकुल हो गये जैसे बन में लगी आग को देखकर लताएं और वृक्ष कुम्हला जाते हैं।

दोहा २ लाइन। अकुलाय=व्याकुल होकर। युग=दोनो। बंदि=प्रणामकर। शिरनाय=माथा नवाकर।

अर्थ=उस समय सीता जी इस समाचार को सुनकर बहुत घबड़ा उठी। जाकर के सास के कमल स्वरूपी दोनों चरणों को छूकर और सिर नवाकर बैठ गई।

चौपाई ३ लाइन। शब्दार्थ—मृदु बाणी=कोमल वचन सुकुमार=कोमलांगी। मंजु=सुन्दर। बिलोचन=लोचन। मोचत=पोंछना। वारी=जल। परिजनहिं=कुटुम्बियो को।

अर्थ—सासने मीठी वाणी से आशीरवाद दिया और अत्यन्त सुकुमारी जानकर वे व्याकुल हो उठी। सीताजी अपने सुन्दर नेत्रो का जल पोंछ रही हैं यह देख कर रामजी की माता बोलीं कि हे प्रिय पुत्र सुनो। सीता जी अत्यन्त कोमलांगी है और सास तथा कुटुम्बी जनों को प्यारी है।

दोहा २ लाइन। भूपालमणि=राजाओं में श्रेष्ठ। कैरव=कुमुद। विपिन जंगल। विधु=चन्द्रमा।

अर्थ—सीताजी के पिता जी राजाओं में मणि जनक जी हैं और श्वसुर सूर्य कुल मे राजा दशरथ हैं। तथा पति गुण और रूप के भण्डार सूर्य कुल रूप कुमुद बन के खिलाने वाले चन्द्रमा के समान तुम हो।

पृष्ठ २९ से ३० तक। सोइ सिय चलन चहति बन साथा। .... घोर घाम हिम बारि बयारी।

शब्दार्थ—आयसु=आज्ञा। सिखावन=शिक्षा, सीख। गुनहू—समझना। आपन=अपना। मोर=मेरा। नीक=भला। भामिनि=प्रिये, प्यारी। सुमुखि=सुन्दरी। सयानी=चतुर। बामा=पत्नी, स्त्री। कानन=जंगल। हिम=शीत।

भावार्थ—वही सीताजी आज श्री रामचन्द्रजी के साथ वन जाना चाहती हैं और उनकी आज्ञा मांग रही हैं। श्रीराम माताजी के सम्मुख उन्हे उत्तर देने में सकोच करते थे, किन्तु

समय को देखकर उन्होंने भली भांति कहा कि हे राजकुमारी, तुम ठीक तात्पर्य समझ लो ! यदि तुम अपना और मेरा भला चाहती हो तो मेरी आज्ञा मानकर घर पर ही रहो। यहा पर तुम अपनी सास की सेवा कर सकोगी और सभी प्रकार से, हे प्रिये तुम्हे घर रहने में ही भलाई रहेगी । आदर पूर्वक सास, ससुर के चरणों की पूजा से बढ़कर वधू के लिए दूसरा धर्म नही है। जब जब मेरी माता अपनी भोली बुद्धि के कारण मेरे प्रेम मे व्याकुल होकर मेरा स्मरण करें तब तब तुम बीती हुई घटनाओं की याद दिलाकर उन्हें अपनी कोमल वाणी से धैर्य दिलाने का प्रयत्न करना । मै सत्य ही कह रहा हूं। कि हे सुन्दरी मै माता की भलाई को ही दृष्टि में रखकर तुम्हे घर पर छोड़ रहा हूं। हे चतुर और सुन्दर सीता, मैं अपने पिता का वचन पूरा कर शीघ्र ही वन से वापिस आ जाऊँगा। दिन बीतते देर नहीं लगती अतः तुम मेरी सीख मानकर घर ही रहो। यदि तुम हठ करोगी तो परिणाम में तुम्हे दुःख ही प्राप्त होगा। जंगल मे बहुत ही गर्मी और शीत पड़ती है। आंधी, पानी, और जंगली जानवरों द्वारा वन बड़ा ही भयंकर और दुर्गम हो जाता है।

दोहा—भूमि सयन ·······समय अनुकूल ॥

शब्दार्थ—भूमि सयन=पृथ्वी पर सोना। बलकल= वृक्षों की छाल के बस्त्र। असन=भोजन। अनुकूल=उपयुक्त।

भावार्थ—जगल में पृथ्वी पर ही सोना पड़ता है और वल्कल के ही वस्त्र पहिनना पड़ते हैं। कन्द, फल, मूल इत्यादि जगली खाद्य सामग्री ही वन का भोजन है और वे भी हर समय प्राप्त नहीं होते। अपने अपने समय पर ही ये वस्तुएं उपलब्ध होती हैं।

रहहु भवन अरु हृदय विचारी।····बोली वचन प्रेम रस पागी।

शब्दार्थ—चद वदनि=चन्द्र के समान मुख वाली। लोचन=नेत्र। ललित=कोमल। उतर=उत्तर। वैदेही=सीता। विदेह की पुत्री। शुचि=पवित्र। विलोचन बारी=अश्रु जल।

अवनि कुमारी=पृथ्वी से उत्पन्न होने के कारण सीता का ही एक नाम। अविनय=धृष्टता। छमहु=क्षमा करो। पागी=भरे हुए।

भावार्थ—जंगल मे भयंकर दुःख होते हैं, ऐसा सोचकर हे चन्द्र के समान मुखवाली सीता तुम गृह मे ही रहो। अपने पति के कोमल वचनो को सुनकर सीताजी के सुन्दर नेत्रो मे अश्रु भर आये। परम पवित्र पति मुझे त्याग रहे हैं, यह सोच-कर वे व्याकुल हो गई और उनके मुंह से उत्तर भी न निकल सका। बड़ा ही धीरज धारण कर उन्होने अपने आंसुओं को रोककर अपनी सास के चरणस्पर्श किये और दोनो हाथ जोड़-कर कहा कि हे देवि मेरी धृष्टता क्षमा करो। मेरे प्राणपति ने मेरी भलाई के लिये ही शिक्षा दी है, परन्तु मैंने अपने मन में भली भांति सोच लिया है कि पति के विछोह के समान संसार मेदूसरा दुःख नही है। ऐसा कह सीताजी के चरण स्पर्श किये और वे प्रेम मे भरे हुए शब्दो में बोली।

दोहा—प्राननाथ करुनायतन,.... ..सील सनेह निधान॥

शब्दार्थ—करुनायतन=दया के निवास, परम दयालु। सुखद=आनन्द देने वाले। सुजान=बुद्धिमान। रघुकुल-कुमुद-विधु=रघुवंश रूपी कुमुदनी के लिये चन्द्र के समान हितकारी।

भावार्थ—हे सुन्दर, सुख देने वाले, बुद्धिमान और करुणा सागर प्राणनाथ श्रीराम तुम रघुवंश रूपी कुमुद के लिए चन्द्रमा के समान ही तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक के समान हो जावेगा। यदि आप यह समझें कि मेरे प्राण पूरी अवधि तक रह सकेंगे तो मुझे अवध मे ही छोड़ जाइये, अन्यथा अपने ही साथ ले चलिये। हे दीनों के हितकारी, शील-सनेह पूर्ण, आनन्ददायक प्रभु मेरी तुमसे यही विनय है।

मोहि मग चलत न होइहि हारी.... बैठारे रघुपति पहि बाहर॥

शब्दार्थ—चरण सरोज = चरण कमल। विपादु = दुःख। सचिव = मंत्री। राऊ = राजा। तनय = पुत्र। नरनाहू = राजा। दारुण = कठिन।

भावार्थ—आपके चरण कमल प्रतिक्षण देखते रहने से मुझे थकावट नहीं आवेगी। मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करूंगी और मार्ग में चलने का श्रम मिटाया करूंगी। वृक्ष की छांह में बैठकर मैं आपके चरण दवाया करूगी और आनन्दित होकर आप पर पंखा किया करूंगी। ऐसा कह कर सीता जी अत्यन्त व्याकुल हो गई और वियोग के दुःख के कारण अपने मुंह से कुछ कहभी न वह सकीं। ऐसी दशा देख श्रीराम ने समझ लिया कि सीता को विवश करके यहां रखने से वे प्राण ही त्याग कर देंगी। अतः सूर्य वंश के स्वामी परम कृपालु श्री राम बोले कि शोक छोड़कर तुम मेरे ही साथ चलो। आज दुख का अवसर नहीं है शीघ्र ही वन चलने की तैयारी करो। इसके बाद राज दर्बार में बहुत अधिक भीड़ हो गई और लोगो को अपार दुख हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मन्त्रियों ने राजा दशरथ को उठाकर बैठाया और प्रेमपूर्ण वचनों द्वारा कहा कि रामचन्द्रजी वन जा रहे हैं। सीता के सहित दोनो भाइयों को देखकर पृथ्वी पति दशरथ बड़े ही व्याकुल हुए। अत्यन्त शोक के कारण उनके हृदय में जलन हो रही थी और वे व्याकुलता के कारण कुछ कह भी न सके। तब श्री रघुवीर ने अत्यन्त प्रेम से उनके चरणो मे सिर नवाया और वन जाने की आज्ञा मांगी कि हे पिता मुझे अपना आशीर्वाद और आज्ञा दीजिये। यह तो हर्ष का समय है कि मैं आपकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ अतः आपको शोक नही करना चाहिये। हे पिता प्रेम के कारण कर्त्तव्य से विमुख होनेपर जगत में यह एक अपवाद (अनुचित कार्य) समझा जाने लगेगा। यह सुन राजा दशरथ ने प्रेम मे भरकर श्रीराम को हाथ पकड़ कर विठा लिया।

संदर्भः- रामचन्द्र जी पिता की आज्ञा से बन जाने को तत्पर हो जाते हैं! किंतु पुत्र प्रेम के कारण राजा दशरथ उन्हे रोकने है। इसी प्रसंग का वर्णन यहां वर्णित है।
सरलार्थः—राजा दशरथ ने रामचन्द्र जी को रखने के लिये कपट छोड़कर बहुत उपाय किये। परन्तु रामचन्द्र जी की मुद्रा देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि वे रुकेंगे नही,क्योंकि वे धर्म परायण धैर्यवान और बुद्धिमान है।

टिप्पणीः—बहुत उपाय किये-वे उपाय यही है कि-'विधिहिं मानव राव मनमाहीं, जिहि रघुनाथ न कानन जाही "सुमरि महेशहिं कहहिं निहोरी।" 'अयश होऊ जग सुयस नशाऊ।' 'उदय करहु जनि रवि रघुकुल गुरु।' इन बातों के अतिरिक्त और भी साम, दाम, दंड, भेद कैकेयी को दिखाया कि (साम) सजहु सुलोचनि मंगल साजू। (दाम) भरतहि अवशि देऊ युवराजू। (दण्ड) लोचन ओट बैठू मुंह गोई। (भेद) चहत न भरत भूप पद भोरे। यह सब उपाय दशरथ ने किये।

शब्दार्थः—उर लीन्हो=हृदय से लगा लिया। सकुच= संकोच। तमकि उठी=क्रोध से पूर्ण हो गई। पट=वस्त्र। भाजन=पात्र। आनी=लाकर। भीरा=अधिक। अस=इस प्रकार। पयान=प्रस्थान। सिरुनाई=प्रणाम करके। वनिता= स्त्री-सीता। बंधु=भाई-लक्ष्मण।

सरलार्थः—तब राजा ने सीता को हृदय से लगा लिया तथा प्रेम पूर्वक बहुत भांति की शिक्षा दी। बन के दुख जिनको सहन करना कठिन है सुनाये तथा सास, ससुर और पिता के सुख समझाये।

सीताजी संकोच के कारण उत्तर नहीं देती सो सुनकर कैकेयी क्रोधित हो उठी। (क्रोधित होने का कारण यही है कि सीता कहीं रुक न जावे।) तथा मुनियों के वस्त्र (भोजपत्र; छाल आदि) और आभूषण (तुलसी की माला पादुका आदि) और तूंबा आदि पात्र लाकर और राम के सामने रखकर मधुर शब्दों में बोली—

हे रामचन्द्र। तुम राजा को प्राणों से प्यारे हो, पिता तुम्हे अधिक शील और प्रेम के कारण छोड़ नहीं सकते; च रण पुण्य; सुन्दर कीर्ति और परलोक भले ही नष्ट हो जावे, राम राजा तुम्हें वन जाने को नहीं कहेंगे। प्राण

इस प्रकार विचार करके जो तुम्हे अच्छा लगे श्री करो-अर्थात् राज्य करना हो तो राज्य करो और वन जाना(?) तो वन जाओ। रामचन्द्र को माता की यह आज्ञा सुनकर रो। प्राप्त हुआ।

रामचन्द्रजी ने शीघ्र ही मुनि का वेष धारण किया ता। माता पिता को प्रणाम कर रवाना हो गये।

भगवान वन का सब सामान सजाकर स्त्री सीता और भाई लक्ष्मण के साथ ब्राह्मणों और गुरु को प्रणाम कर तथा सबको दुख से बेहोश करके चल दिये। (राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ कौ नाइ) त्याग का कितना महान आदर्श है।

शब्दार्थ—सचिव=मन्त्री। देवसरि=गंगा। बिसेखी अत्यन्त। हरख=हर्ष। पायउ=पाया।

सरलार्थ—सीता और मंत्री सहित दोनों भाई राम, लक्ष्मण शृंगवेरपुर जाकर पहुंचे। रामचन्द्र गंगाजी को देखकर

उतरे, अत्यन्त हर्ष सहित प्रणाम किया तत्पश्चात् लक्ष्मण, मंत्री और सीताजी ने प्रणाम किया तथा सबके साथ रामचन्द्रजी ने सुख का अनुभव किया।

शब्दार्थ—निहारी=देखकर। कहहु=कहो। पठये=भेज दिये। भल=अच्छा। लोचन=नेत्र। लाहु=लाभ। विधि=विधाता। मगमाहीं=मार्ग में। सिहाहीं=सराहना करते हैं। अमरावति=इंद्र लोक। भरि=भर कर। बिलोकहिं=देखते हैं। घनस्यामहिं=घन के समान श्याम वर्ण राम को।

सरलार्थ—राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर नगर के स्त्री, पुरुष परस्पर वार्तालाप करते हैं कि हे सखि! वे माता-पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे (सुन्दर) बालक बन को भेज दिये।

कोई २ कहता है कि राजा ने अच्छा किया जो विधाता ने हमें नेत्रों का लाभ दिया।

जो नगर और ग्राम मार्ग में बसते हैं, उनकी नाग लोक और देवलोक भी सराहना करते हैं (कितने भाग्यशाली हैं कि राम के दर्शन पा रहे हैं) जहां जहां रामचन्द्र के चरण चले जाते हैं उस स्थान के समान इन्द्रलोक भी नहीं है। जो सीता और लक्ष्मण समेत मेघ के सदृश्य श्याम रामचन्द्रजी को नेत्रों भर देखते हैं। जिस सरोवर और नदी में रामचन्द्र स्नान करते हैं उनकी मन्दाकिनी और मानसरोवर भी सराहना करते हैं।

पृष्ठ ३२। शब्दार्थ—तर=नीचे। तासु=उसकी। परसि=स्पर्श करके। पदुम=कमल। परागा=रज। भूरि=बड़ा। मगु=मार्ग में। निकसहिं=पहुँचते हैं। बिसारि=भूलकर। चितवहिं=देखते हैं। मति=बुद्धि। लाई=लगाकर। दिया=दीपक के समान। लागहिं पाये=चरण स्पर्श करती हैं। सुभाये=सुहा-

बने । छमहि=क्षमा करना । बिलगु न मानबी=बुरा न मानना । इन्हते=जिनसे । लहि=प्राप्त करने हैं । मनोज= कामदेव । को=कोन । आहिं=हैं । मंजुल=मधुर । बानी= वाणी । मनमहुँ=मनमें । धरनी=पृथ्वी । वर वरनी=श्रेष्ठ वर्ण वाली । पिकबयनी=कोकिल कंठी । बहुरि=फिर । बदनु =मुख ।ढांकी=ढंक कर । तन=की ओर । चितई=देखा । बांकी=टेढ़ी । रंकन्ह=दरिद्रो ने । राय=रत्नों की । रासि= ढेरी । जनु=मानों ।

सरलार्थ—जिस वृक्ष के नीचे जाकर प्रभु विश्राम करते हैं उसकी कीर्ति कल्प वृक्ष भी गाते है । रामचन्द्रजी के कमल चरणों की रज को स्पर्श करके पृथ्वी भी अपने भाग्य को महान् मानती है ।

दोहा:—मेघ छाया करते जाते हैं और देवताओं के समूह पुष्प वृष्टि करते और सराहना करते जाते है तथा रामचन्द्रजी मार्ग में पर्वत, वन, पक्षी और हरिणों को देखते चले जाते हैं ।

सरलार्थः—सीता लक्ष्मण समेत जब रामचन्द्र जी किसी गांव के पास जाकर निकलते है तो यह समाचार सुनकर बालक से लेकर वृद्ध तक सब नर नारी घर के सब कार्यों को छोड़ छोड़ कर (दर्शन के लिये) शीघ्र ही उठ दौड़ते है ।

रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता जी की शोभा (सब लोग) चित्त, मन और बुद्धि लगाकर देखते हैं । स्नेह के प्यासे स्त्री पुरुष, ऐसे थकित हुये जैसे हरिणी-हरिण दीपक को देखने से चकित-अर्थात् चित्रवत खड़े रह जाते हैं ।

नगर की स्त्रियां सीताजी के पास जाती हैं और अति प्रेम के कारण पूछने में संकुच होती है । (स्त्री स्वभाव ही होता

है कि बिना विचारे ही कुछ भी पूछ बैठती है अतः सकोच करती हैं कि कहीं इन्हे बुरा न लग जावे।) सब वारबार पैर पड़ती हैं और कोमल, सरल; सुहावने वचन कहती है।

हे राजकुमारी! हम बिनती करती है, परन्तु स्त्री स्वभाव से कुछ पूछने में भयभीत होती हैं। हे स्वामिनी! हमारी ढीठता को क्षमा करना और गंवार समझकर (हमारे कहे का) बुरा न मानना। ये जो सहज सुन्दर दोनो राजकुमार हैं जिनसे मरकत मणि और स्वर्ण ने शोभा पाई है (मरकतमणि की शोभा राम सी और स्वर्ण सदृश लक्ष्मण की है) हे सुन्दर मुखवाली! जो करोड़ो कामदेवो को लज्जित करने वाले है कहो तुम्हारे कौन हैं।

प्रेम से भरी कोमल बाणी को सुनकर सीताजी संकोच करते हुये मन मे हसी। उन स्त्रियो को देखकर सीताजी पृथ्वी को देखने लगी अर्थात् लज्जा से नीची दृष्टि करली तथा दो संकोच से वह श्रेष्ठ सुरूपा संकुचित होने लगीं। (प्रथम सकोच स्त्रियों का, कि यदि कुछ कहूँगी तो ये बुरा मानेंगी और द्वितीय यह कि कैसे कहे कि ये मेरे पति है।)

फिर वह मृगनयनी कोकिलकंठी संकोच करते हुये स्नेह सहित मीठी वाणी से बोलीं। सहज स्वभाव और सुन्दर गोरे शरीर वाले छोटे जिनका नाम लक्ष्मण है मेरे देवर हैं। (यह कहकर) फिर चन्द्रमा के समान मुख को आचल से ढककर टेढ़ी भौहें कर और स्वामी की ओर देख, खजन (पक्षी) जैसे उज्जवल कटाक्ष से सीताजी ने उनको अपना पति कहा। (इस छवि को देख) सब गांव की स्त्रियां ऐसी प्रसन्न हुई मानो दरिद्रो ने रत्नों की ढेरी लूटी हो।

(पृष्ठ ३२) शब्दार्थः—पाय परि=चरण छूकर। विधि=प्रकार। असीस=आशीर्वाद। सुहागिनी=सौभाग्यवाली। होहू=रहो। महि=पृथ्वी। अहिसीस=शेषनाग के सिर पर। गवन=प्रस्थान। फेरे=लौटा दिये। लाइ=लगा।

सरलार्थः—अत्यन्त प्रेम से सीताजी के चरण छूकर अनेक भाँति आशीर्वाद देती है कि जब तक पृथ्वी शेषनाग के मस्तक पर स्थित है (तब तक) तुम सदा सौभाग्यवती रहो। लक्ष्मण और सीताजी समेत रामचन्द्रजी वन को चले और प्रिय वचन कह कर सब लोगों को लौटा दिया; किन्तु उनके मन अपने साथ लगा लिये।

(पृष्ठ ३३) शब्दार्थः—दशानन=रावण। बरनि=वर्णन करना। कनक=स्वर्ण। बेख=वेष। मृगकर=हरिण की। सत्यसंध=सत्य प्रतिज्ञा। बध करि=मारकर। आनहु=लाओ। कटि=कमर। परिकर=फेंटा। साँधा=चढ़ाया। निसिचर=राक्षस। केरो=की। भाजी=भागकर। धाये=दौड़े सरासन=धनुष। पराई=भाग जाता है। ताकि=लक्ष्य करके। परउ=गिरा। कै=का। सुमरेसि=स्मरण किया। तजत=त्यागते समय। फिरे=लौटे। तूणीरा=तूणीर, बाण रखने का पोगरा जो पीठ पर पीछे रहता है। आरत=करुण। गिरा=ध्वनि। सन=से। सभीता=भयभीत हो। जाहु=जाओ। बेगि=शीघ्र। बिहसी=हँसकर। सुनु=सुनो।

सरलार्थः—फिर मुनीश्वरों को सुख देनेवाले रघुनायक सीता और लक्ष्मण सहित जिस वनमें रहते थे उस वन के पास रावण गया और तब मारीच कपट मृग बन गया। ऐसा अत्यन्त विचित्र रूप बनाया कि कुछ वर्णन नहीं किया जाता

स्वर्ण की मणि जटित देह बना ली। सीताजी ने अति सुन्दर मृग देखा जो अंग प्रत्यग में मनोहर वेष धारण किये था।

(सीताजी बोली) हे महाराज! कृपा निधान! रामचन्द्रजी सुनो इस मृग की छाल तो अति ही सुन्दर है। हे भगवान! हे सत्यप्रतिज्ञ! इसे मार कर मृग छाला लाओ। (भगवान ने) मृग को देखते ही कमर में फेटा बाधा और और हाथ में सुन्दर धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाया। भगवान ने लक्ष्मण से समझाकर कहा कि बन में बहुत से राक्षस फिरते हैं। (सो तुम) बुद्धि ज्ञान बल और समय पर विचार कर सीता जी की रक्षा करना।

भगवान को देखकर मृग भाग चला तब रामचन्द्रजी धनुष बाण सजाकर पीछे दौड़े। वह कभी तो पास आ जाता है और कभी दूर भाग जाता है, कभी प्रकट होता है और कभी छिप जाता है। प्रकट होता हुआ और छिपता हुआ इस प्रकार बहुत से छल बल करता हुआ भगवान को दूर ले गया। तब रामचन्द्रजी ने लक्ष्य कर तीक्ष्ण बाण मारा और वह घोर चीत्कार करके पृथ्वी पर गिर पड़ा। पहले लक्ष्मणजी का नाम लेकर पीछे रामचन्द्रजी का स्मरण करने लगा।

प्राण छोड़ते ही अपनी राक्षसी देह प्रकट की और सीता सहित रामचन्द्र का स्मरण किया। राक्षस को मार कर रामचन्द्र हाथ में धनुष और कमर में तरकस से सुशोभित शीघ्र लौटे। यहा सीता ने (हा लक्ष्मण) करुण ध्वनि सुनी तो बहुत व्याकुल होकर लक्ष्मण से कहने लगी। शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई पर कष्ट पड़ा है (तब) लक्ष्मण ने हसकर कहा हे माता! सुनो!

(पृष्ठ ३४) शब्दार्थः—भृकुटी विलास=भौंह फेरने से। सृष्टिलय=संसार का नाश। कि=क्या। सोई=उस पर। मति=बुद्धि। रावन ससि राहू=रावण रूपी चन्द्रमा को ग्रसने वाले राहू-रामचन्द्र। सून=सूना। बीच=इस समय। जती=यती। नाईं=प्रकार। गाढ़ा=महान। खल=दुष्ट। हरिवधुहिं=सिंहनी को। छुद्र सस=छोटा सा खरगोश। रिसाना=क्रोधित हुआ। आतुर=शीघ्र। अनुजहिं=छोटे भाई को। बाहिज=बड़े भाई, रामचन्द्र। परिहरेहु=छोड़। पेली=अवहेलना कर। निकट=समूह। खोरी=दोष। तहवां=वहां। जहवां=जहां। हीना=रहित। प्राकृत=संसारी मनुष्य। केहरी=सिंह। इव=भांति। विषादा=दुःख।

सरलार्थः—जिसकी भृकुटी मात्र के फेरने से सृष्टि का नाश हो जाता है उस पर क्या स्वप्न में भी आपत्ति आ सकती है। जब सीता ने मार्मिक शब्द कहे तो भगवान की प्रेरणा से लक्ष्मण की बुद्धि चलायमान हो गई। वन और दिशाओं के देवता सबको (सीता) सौंप कर जहां रावण रूपी चन्द्रमा को राहू के समान ग्रसने वाले रामचन्द्र जी थे वहां चले।

रावण ने इस अवसर पर सूना देखा और सन्यासी के वेष में (सीता जी के) पास आया। अनेक भांति की सुन्दर कथा कहकर सुनाई और राजनीति भय और प्रीति दिखाई। सीताजी ने कहा कि सुनो तुम हो तो सन्यासी महाराज, परन्तु वचन दुष्टों की भांति बोलते हो।

तब रावण ने अपना रूप दिखाया और जब नाम सुनाया (कि मैं रावण हूँ) तब सीताजी भयभीत हो गईं। सीताजी ने बड़ा धैर्य बांधकर कहा अरे दुष्ट! खड़ा रह, भगवान आ

पहुँचे हैं। जैसे सिंहनी को (काल के वश होकर) छोटा सा खरगोश चाहता है उसी प्रकार हे राक्षसराज (रावण) तू काल के वश हुआ।

ये वचन सुनते ही रावण क्रोधित हो उठा। और मन मे उनके चरणो में प्रणाम कर सुख अनुभव किया। तब रावण ने क्रोधित होकर (सीता को) रथ पर बैठा लिया और भयभीत होकर आकाश मार्ग से चला, परन्तु भय के कारण रथ नही हांका जाता था।

रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को आते देखा तो मन में बहुत चिंता की (और बोले) हे प्यारे! सीता को अकेली छोड़कर और मेरे वचन की अवहेलना कर यहाँ चले आये? बन मे राक्षसों के समूह विचरण किया करते हैं सो मेरे मन मे (प्रतीत होता है) सीता आश्रम में नहीं हैं।

लक्ष्मण ने राम के कमल के समान चरण पकड़कर हाथ जोड़कर कहा कि नाथ! मेरा कुछ दोष नहीं है। फिर लक्ष्मण साथ भगवान वहां गये जहां गोदावरी नदी के किनारे आश्रम था। आश्रम को सीता से विहीन देखकर (भगवान) ऐसे दुःखी हुये जैसे ससारी मनुष्य दीन होता है।

रामचन्द्रजी ने वह वन भी त्याग दिया और चले, दोनों अतुल बलशाली नरसिंह हैं। वियोगी की भांति भगवान विषाद करते हुये अनेक कथा और संवाद कहते हुये चले जाते हैं। फिर प्रभु पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवर के किनारे गये।

(पृष्ठ ३५) शब्दार्थः—वारी=जल। उदार गृह=दयालु के घर। जाचक=भिखारियो। भीरा=भीड़, समारोह। मर्म=भेद। मायाछन्न=माया से परिवृत। संजुत=संयुक्त। अगाध=गहरे।

सरलार्थः—(जिसमें) संतो के हृदय के समान स्वच्छ जल भरा था तथा मन को मोहने वाले चार घाट बने थे। जहां तहां बहुत से मृग इस प्रकार जल पी रहे थे मानो कि बड़े दयालु आदमी के द्वार पर भिखारियों का समारोह हो। पुरइन की सघनता के कारण जल का भेद उसी प्रकार नहीं मिलता जैसे माया से लिप्त जीव को निर्गुन ब्रह्म का भेद प्राप्त नहीं होता। बहुत से गहरे जल मे सब मछलियां एक रस अर्थात् आपस मे मिल कर ऐसी सुखी रहती हैं जैसे धर्मशील (मनुष्यों) के सब दिन सुख से बीतते हैं।

फिर सीता की खोज करते हुये राम और लक्ष्मण बहुत से वन देखते चले। लता और वृक्षों से आवृत घोर वन जहा बहुत पक्षी और पशु हाथी और सिंह थे।

पृष्ठ ३५। शब्दार्थ—नियराया = समीप आया। सींवाँ सीमा। जुगल = दो। निधाना = भंडार। बटु रूप = ब्राह्मण का वेष। तैं = पास। सेन = संकेत। बुझाई = समझाकर। मन मैला = मनमें कपट। तुरत = शीघ्र। सैला = शैल, पर्वत। तेही = उसे ही। उर लावा = हृदय से लगा लिया। जुड़ावा = शीतल किया।

सरलार्थ—तब रामचन्द्रजी आगे चले और इस प्रकार ऋष्यमूक पर्वत समीप आ पहुँचा। वहां पर मन्त्री सहित सुग्रीव निवास करते थे (जिसने) अतिबल की सीमा (राम लक्ष्मण) को आते देखा। अत्यन्त भयभीत होकर (सुग्रीव) हनूमान से बोले कि सुनो दो पुरुष बल और रूप के भंडार चले आ रहे हैं। तुम ब्राह्मण का रूप धारण कर वहां जाकर देखो और संकेत से मुझे समझाकर कह देना।

यदि बालि ने मन में कपट भाव से इन्हें भेजा हो तो यह पर्वत त्यागकर मैं शीघ्र ही भाग जाऊं। तब (हनूमान) ब्राह्मण का रूप धारण कर वहां गये और सिर झुकाकर इस प्रकार पूछने लगे कि श्याम और गौर शरीर वाले तुम (दोनों) कौन हो जो क्षत्री का रूप धारण कर वन में भ्रमण कर रहे हो।

(राम ने उत्तर दिया) कौशलपति दशरथ के पुत्र हैं और हम पिता की आज्ञा का पालन कर वन को आये हैं। हमारा नाम राम और ये लक्ष्मण है तथा दोनों भाई हैं, हमारे साथ सुकोमल शरीर वाली स्त्री शोभित थी। उसे (राजा विदेह की पुत्री) वैदेही को यहां राक्षस ने चुराली है, ब्राह्मण हम उसी को खोजते भटक रहे हैं।

(राम ने पूछा) हमारा चरित्र तो हमने सुना दिया अब हे ब्राह्मण! तुम अपनी कथा समझाकर कहो। (हनूमान) भगवान को पहिचानकर उनके चरण पकड़कर गिर पड़े(महादेव कहते हैं) हे पार्वती! वह सुख वर्णन नहीं किया जाता। (जब कपट का बटु स्वरूप जाता रहा) तब रामचन्द्र ने उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और नेत्रो के जल से सींचकर शीतल किया।

पृष्ठ ३६। शब्दार्थ—जनि=नहीं। ऊना=भेद। सूला =दुख। मैत्री=मित्रता। अभय=निर्भय। करीजै=कीजिए। मरकट=वानर। कोटि=करोड़ो। दुअउ=दोनों। मोसन= मुझसे। उभय दिशि=दोनों ओर की। पावक=अग्नि। साखी =साक्षी। निमिष=पल। महुँ=मे। सायक=बाण से।

सरलार्थ—हे हनुमान! सुन तू मन में कोई भेद न समझ, तू मुझे लक्ष्मण से द्विगुना प्यारा है। हनुमान अपने

स्वामी को अनुकूल देख मनमें प्रसन्न हुये और सुग्रीव के दुःखी होने के कारण जो दुख थे वे सब मिट गये। (हनुमान बोले) हे नाथ! पर्वत पर बानरों का स्वामी रहता है, वह सुग्रीव आपका दास है।

हे स्वामी! उससे मित्रता कीजिए और दीन जानकर उसको निर्भय कीजिये। वह सीताजी की खोज करा देंगे और करोड़ों बन्दरों को जहां तहां भेज देंगे। इस प्रकार सब वार्ता समझाकर दोनों को पीठ पर चढ़ा लिया।

जब सुग्रीव ने राम को देखा तो अपने जन्म को अतिशय धन्य माना। बड़े आदर से उनके चरणों में शीश नवाकर मिला और रामचन्द्रजी भी लक्ष्मण समेत मिले। सुग्रीव के मन में इस भांति सोच विचार है कि हे विधाता! भला ये मुझसे प्रीति क्यों करेंगे? अर्थात् कभी नहीं करेंगे।

तब हनुमान ने दोनों ओर अर्थात् सुग्रीव से राम, लक्ष्मण की और राम लक्ष्मण से सुग्रीव की सब कथा समझाकर कही और अग्नि को साक्षी दे दोनों की दृढ़ प्रीति जोड़ दी।

(वर्षा और शरद् ऋतु के बहाने ज्ञान और वैराग्य तथा राजनीति का उपदेश करके राम बोले) हे प्यारे! वर्षा बीत गई और निर्मल शरद ऋतु भी आ गई; परन्तु सीता की कुछ भी खबर नहीं पाई। किसी प्रकार एक बार समाचार पाऊँ तो काल को भी जीतकर पल भर में ले आऊं। सुग्रीव भी राज्य, कोष नगर और रानी के मिलने से मेरी सुध भूल गया। जिस बाण से मैंने बालि को मारा था उसी बाण से मूढ़ (सुग्रीव) को कल मारूंगा। लक्ष्मण ने भगवान को क्रोधातुर जानकर धनुष चढ़ाकर हाथ में बाण लिया।

तब करुणानिधान भगवान ने लक्ष्मण को समझाया कि हे प्यारे! उसे भय दिखाकर ले आओ। उसी समय लक्ष्मण जी नगर में आये तो (उनको) क्रोधित देखकर बन्दर जहा तहां दौड़ने लगे। लक्ष्मण जी को अपने कानों से क्रोधित सुन सुग्रीव अकुलाकर कहने लगा।

पृष्ठ ३७। शब्दार्थ—सुजसु=सुयश। बखाना=वर्णन किया। पखार=धोकर। गहि भुज=हाथ पकड़कर। छोभ=मोहित। छन=क्षण। तनय=पुत्र। समुदाई=समूह। खोह=गुफा, कंदरा। छोह=मोह। लावहू=लावेगा। पापिउ=पापीभी। जाकर=जिसका। कदराई=भय। बिसमय=आश्चर्य। संसय=शंका।

सरलार्थ—हे हनुमान! सुनो, तुम तारा को साथ लेकर जाओ और प्रार्थना कर कुमार (लक्ष्मण) को समझाओ। हनुमान ने तारा समेत जाकर (लक्ष्मणजी के) चरणों में प्रणाम कर भगवान का सुन्दर यश वर्णन किया। बिनती करके महलों में ले आये और चरण धोकर पलंग पर बिठाया। फिर सुग्रीव ने चरणों में सिर नवाया तो लक्ष्मण ने भुजा पकड़कर कंठ से लगा लिया।

(फिर सुग्रीव बोला) हे स्वामी! विषय के समान मद और कुछ नहीं है जो मुनीश्वरों के मन को भी क्षण भर में मोहित कर लेता है। नम्रता के वचन सुनते ही लक्ष्मण जी ने सुख अनुभव किया और उसे बहुत भांति समझाया। फिर हनुमान ने सब कथा कह सुनाई जिस प्रकार दूतों के समूह खोज को गये थे।

वन में नदी, तालाब, पर्वत और कन्दराओं को ढूंढते हुये [illegible] (बन्दर) चले और रामचन्द्रजी के काम में मन लगने से शरीर का मोह भी जाता रहा।

यहां बन्दरों को मन मे यह सोच हुआ कि (महिने भर की) अवधि तो पूर्ण होने पर आई और काम कुछ भी नहीं बना। अंगद नेत्रों मे अश्रु भर कर कहने लगा कि हमारी तो दोनों प्रकार से मृत्यु हुई। यहां तो सीता की खबर नहीं मिली और यहां जाने पर सुग्रीव मारेगा। (वह तो) पिता के मरने पर ही मुझे मार डालता (परन्तु) रामचन्द्र जी ने (मेरे पिता के) निहोरे से रखा।

ऐसा कह सब बन्दर खारे समुद्र के पास जाकर डाभ बिछाकर बैठ गए। जामवंत ने अंगद का दुःख देखकर बहुत उपदेश और कथा कही। इस भांति बहुत प्रकार की कथा कह रहे थे कि पर्वत की कंदरा में (जटायु के भाई) सपाती ने सुना।

जो सात योजन विस्तृत समुद्र को लांघेगा वही बुद्धिमान राम के इस कार्य को कर सकेगा। पापी भी जिसका नाम स्मरण कर अत्यन्त अपार संसार रूपी सागर को पार कर लेते हैं उसके दूत तुम भय को त्यागकर और राम को हृदय में धारण कर उपाय करो।

महादेवजी बोले) हे उमा! इस प्रकार कहकर जब गीध वहां से चला गया तो उन सबके मन में बहुत ही आश्चर्य हुआ। फिर सबने अपने बल का वर्णन किया, किंतु समुद्र पार जाने की सबके मन में शंका रही।

(पृष्ठ ३८) शब्दार्थः—रिच्छपति = जामवंत। का = क्यों। पर्वताकारा = पर्वत के समान आकार। कनक तरन = स्वर्ण के समान। निसचरि = राक्षसी। सक = सकता। गगनचर = पक्षी मारुत सुत = हनुमान। वारिधि = समुद्र। कालहिं = कालकी। उतग = ऊँची लहरों वाला। पुर = नगर। रखवारे = रक्षक। निसि = रात्रि में। पैसार = प्रवेश। मसक = मच्छर। नर हरी = रामचन्द्रजी।

सरलार्थः—फिर जामवन्त ने कहा हे हनुमान ! सुनो तुम ऐसे बलवान होकर क्यो मौन धारण किये हो । हे पवन के पुत्र ! तुम्हारा बल पवन ही के समान है और बुद्धि ज्ञान और विज्ञान के समुद्र हो । हे प्यारे ! कौन सा काम ससार में कठिन है जो तुमसे नहीं हो सकता ।

(हे हनुमान) तुम्हारा अवतार रामचन्द्रजी के कार्य के लिये हुआ है यह सुनकर हनुमान फूलकर पर्वत के समान हो गये । स्वर्ण के समान रग के शरीर मे ऐसा तेज विरामान है मानो पर्वतो का दूसरा राजा हो ।

वारंवार सिंह के समान गर्जना करके बोले कि खारे समुद्र को लीला ही में उलांघ जाऊ और सहायको सहित रावण को मारकर त्रिकूट को उखाड़ कर यहा ले आऊं ।

एक राक्षसी समुद्र में रहती थी और माया से आकाश के पक्षियों को पकड़ लिया करती थी । जो आकाश मे उड़ते थे उनकी छाया जल में देखकर उस छाया को पकड़ लेती जिससे वह (पक्षी) उड़ नहीं सकता था इस भांति सदैव पक्षियो को खाया करती थी । उसने वही कपट हनुमान से किया तो उसका छल हनुमान ने शीघ्र ही पहिचान लिया ।

उसे मार मन मे धैर्य धारण कर वीर हनुमान समुद्र के पार गये वहां जाकर बन की शोभा देखी जहाँ मधु के लोभी भौंरे गूंज रहे हैं । भाँति भाँति के वृक्ष फल और फूल सुशोभित हैं तथा पक्षी और पशुओ के समूह देखकर मन को प्यारे लगते हैं । आगे एक बड़ा पर्वत देख निडर हो कूदकर उसपर चढ़ गये ।

(महादेव कहते हैं) हे पार्वती । यही सब हनुमान की कीर्ति या बड़ाई नहीं है, भगवान का प्रताप है जो काल को भी

खालेता है। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने लंका को देखा। वहाँ इतना बड़ा किला बना हुआ है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। चारो ओर समुद्र और बहुत ऊंचा स्वर्ण का अत्यन्त प्रकाशमान परकोटा है।

(हनुमानजी ने) नगर के बहुत से रक्षक देखकर मन में विचार किया कि रात्रि के समय बहुत छोटा रूप धरके नगर में प्रवेश करूं।

हनुमानजी मच्छर के समान अर्थात् छोटा सा रूप रखकर और नरो में सिंह रूप ऐसे रघुनाथ जी का स्मरण करके चल दिये।

(पृष्ठ ३६) शब्दार्थः—पैठा=प्रवेश किया। सुमिर=स्मरण करके। करि शोधा=खोजकर। जोधा=योद्धा। समन=सोता हुआ। महुँ=में। जामा=बाहर। श्रेणी=समूह। चितन=देखकर। विसमय=संदेह।

सरलार्थः—हनूमान ने बहुत छोटा रूप धारण कर लिया था उससे भगवान का स्मरण कर नगर में प्रवेश किया। प्रत्येक गृह में खोज की तो जहाँ तहाँ अगणित योद्धा देखे। (फिर) रावण के महल मे गये जो इतना चित्रविचित्र था कि वर्णन नहीं किया जा सकता।

हनुमानजी ने उसे (रावण को) सोते हुये देखा; (किंतु) सीताजी कहीं भी न दिखाई दी। फिर वही (छोटा) रूप धरकर वहां गये; जहाँ आशोकवन में सीताजी रहती थीं। (जानकी को) देखकर (हनुमानजी ने) मनही मन प्रणाम किया और बैठे बैठे एक पहर रात्रि व्यतीत हो गई। (मनमें प्रणाम इसलिये किया कि राक्षसियों के पहरे के कारण उच्च स्वर से बोलने का अवसर नहीं था)। (जानकीजी का) शरीर दुर्बल हो रहा था, मस्तक पर

जटाओं की एक लट लटक रही थी, और मन में रामचन्द्रजी के गुण समूहों को जप रही थीं।

नेत्र अपने पैरों की ओर थे और मन रामचन्द्रजी के चरणों में लवलीन था। ऐसी दुखी सीता को देखकर हनुमानजी बहुत दुखी हुये।

(हनुमान जी) वृक्ष के पत्तों में छिप रहे और विचार करने लगे कि भाई क्या करूं। सीताजी को अत्यन्त विरह में व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमानजी को कल्प के बराबर व्यतीत होता प्रतीत हुआ।

तब (हनुमानजी ने) मन में विचार करके अंगूठी डाल दी मानो अशोकवृक्ष ने अंगार दे दिया (और सीताजी ने उसे) प्रसन्नता से उठकर हाथ में उठा ली। तब मनको मोहने वाली अगूठी देखी जिस पर राम का नाम अकित था और जो बड़ी ही सुन्दर थी। चित्त में चकित होकर अंगूठी को पहिचानी और प्रसन्न होकर हर्ष और दुख से हृदय में व्याकुल हुईं। (हर्ष अंगूठी पाकर हुआ और दुःख यह सोचकर हुआ कि यह यहां आई कैसे ? रामजी को मारकर तो कोई यहां नही ले आया।)

फिर यह सोचकर कि रामचन्द्रजी को कौन जीत सकता है वहतो अजेय हैं (हृदय को सन्तोष देती है) और माया से ऐसी अंगूठी निर्मित नही हो सकती। (सीता बड़े बिचार में पड़ीं) जब सीताजी मन में बहुत से विचार करने लगीं तब हनुमान मीठे वचन बोले।

रामचन्द्रजी के गुणों का वर्णन करने लगे। (जिनको) सुनते ही सीताजी के दुख दूर हो गये। कान और मन लगा कर सुनने लगीं तब हनुमानजी ने आदि से अर्थात जबसे

हनुमानजी मिले थे और जो जो उपाय करते रहे सब कथा कही। (सीताजीने कहा) हे भाई! जिसने कानों को अमृत के समान सुख देने वाली कथा सुनाई वह कहो प्रकट क्यों नहीं होता तब हनुमानजी पास चले गये तो (सीता जी) फिर कर बैठ गईं और उनके मन में सन्देह हुआ (कि यह सब रावण की माया तो नहीं है।)

पृष्ठ ४० । शब्दार्थ—सपथ=सौगन्ध । आनी=लाया हूँ । सहिदानी=चिन्ह । हरिजन=प्रभु का भक्त। बूड़त= डूबती हुई। मो कह=मेरे लिये । जलयाना=पोत, नौका । अनुज= लक्ष्मण । धरी=धारण की है। निठुराई=कठोरता। बानि= स्वभाव। सुरति=स्मरण। हौं=मुझे। निपट=बिलकुल । ऊना =दुःख। धरु=रखो । धीरा=धैर्य। लै जैहहिं=ले जावेंगे। तिहुँपुर=तीनो लोकों में। जस=यश। गैहहिं=गावेंगे। जातु धान=सेना। समर=युद्ध मे। भरोस=विश्वास । लयऊ= धारण किया।

(हनुमान कहने लगे) हे सीता माता! मैं रामचन्द्रजी का दूत हूँ, करुणा के निधि की सच्ची सौगध (खाता हूँ) हे माता! यह अंगूठी मैं ही लाया हूँ। रामचन्द्रजी ने यह तुमको चिन्ह रूप दी है। (सीताजी बोली) कहो मनुष्य और बन्दर का संग कैसे हो सकता है? फिर हनुमानजी ने जिस प्रकार साथ हुआ था, सो कथा कही।

हनुमानजी के सुन्दर वचन सुनकर (सीताजी के) मन में विश्वास हुआ और यह जान गई कि मन, क्रम, वचन से यह दया के सागर (भगवान) का सेवक है। भगवान का दास जान कर बहुत स्नेह बढ़ा, नेत्रों मे जल भर आया, और रोमांच हो गया। (और बोलीं) हे हनुमान रामचन्द्रजी तो बड़े कोमल

स्वभाव और दयावान हैं, उन्होंने किस कारण कठोरता धारण की है। सहज स्वभाव से ही सेवक को सुख देने वाले रामचन्द्रजी को देखकर शीतल होंगे।

(सीता के मुख से) वचन नहीं आते, नेत्रो में जल भर आया कि हे नाथ! मुझको बिलकुल ही त्याग दिया। सीताजी को वियोग में बहुत व्याकुल देखकर हनुमान नीति सहित कोमल वचन बोले—हे माता! भगवान लक्ष्मणजी समेत कुशल है, (परन्तु) वे कृपानिधान तुम्हारे ही दुख से दुखी हैं। हे माता मनमें कुछ बुरा मत मानो, रामचन्द्रजी को तुमसे दूना स्नेह है।

हे माता! थोड़े दिन धैर्य धारण करो, रामचन्द्रजी बन्दरो को साथ लेकर आवेंगे। राक्षसो को मारकर तुम्हें ले जावेंगे और नारद आदि (मुनीश्वर) त्रिलोक में यश गावेंगे। (तब सीताजी बोलीं) हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान (छोटे) हैं (तो आकर क्या करेंगे ? क्योंकि यहां तो) राक्षस योद्धा बड़े बलवान भरे पड़े हैं।

मेरे मन में बड़ा सन्देह है, (यह सुनकर) हनूमान ने अपने शरीर को प्रकट कर दिखाया। जिनका सुमेरु पर्वत के समान शरीर युद्ध में भयंकर और बलवान हो गया। तब जानकीजी के मन में विश्वास हुआ फिर हनूमान ने छोटा रूप धारण कर लिया।

(पृष्ठ ४१) दोहाः—सुनु माता········।

शब्दार्थः—साखा मृग=बन्दर। व्याल=सर्प।

भावार्थः—हनुमान जी सीता जी से कहते हैं कि हे माता मैं तो जाति का बन्दर हूँ। मुझ में न तो बड़ी बुद्धि है और न शक्ति ही है। मेरा बल और बुद्धि वास्तव में भगवान

राम की कृपा का परिणाम है। उनके प्रताप के कारण एक छोटा सर्प भी शक्तिशाली गरुड़ को नष्ट कर सकता है।

चौपाइयां:—बार बार ·········मन माहीं।

शब्दार्थ:—नायेसि=नवाया। सीसा=सिर। कीसा=बन्दर। कृत कृत्य=सफल, निश्चिन्त। आसिष=आशीर्वाद। अमोघ=कभी न चूकने वाला। अतिसय=बहुत अधिक। रूखा=वृक्ष। विपिन=वन। सुभट=वीर। रजनीचर=राक्षस।

भावार्थ:—श्री सीताजी के चरणों में बार बार सिर नवा कर और दोनों हाथ जोड़ कर हनुमानजी बोले कि हे माता अब मैं पूर्ण निश्चिन्त हो गया हूँ क्योंकि मुझे आपका कभी खाली न जानेवाला आशीर्वाद प्राप्त हो गया है। मुझे इन वृक्षों मे लगे हुये सुन्दर फलों को देखकर बहुत जोर से भूख भी लग आई है। यह सुनकर सीताजी बोलीं कि हे पुत्र इस वन की रक्षा बड़े बड़े वीर राक्षस किया करते हैं। तब हनुमान बोले कि माता यदि आपके मन में प्रसन्नता हो तो मुझे उन राक्षसों से थोड़ा भी भय नहीं है।

दोहा:—देखि बुद्धि ·········फल खाहु।

भावार्थ.—हनुमान जी की बुद्धि और बल की निपुणता देखकर सीताजी ने उन्हें अपनी आज्ञा दे दी और बोलीं कि हे पुत्र श्रीरामके चरणों को हृदय में धारण कर तुम मीठे फलों को खाओ।

चौपाइयां:—चलेउ नाइ सिर ·········गर्जा॥

शब्दार्थ:—पैठेउ=प्रवेश किया। खायेसि=खाये। तरु=वृक्ष। तोरइ=तोड़ना। संहारे=मार डाले। अक्षयकुमार=

रावण का लड़का। अपारा=बड़ी संख्या में। विटप=वृक्ष। तर्जा=दौड़ कर। निपाति=फेंक कर मारा। महा धुनि=जोर की आवाज।

भावार्थ—सीताजी को सिर नवा कर हनुमान बाग में प्रविष्ट हुए और फलों को खाने लगे तथा वृक्षों को तोड़ने लगे। बहुत से राक्षसो को उन्होने मार डाला और कुछ अधमरे बचे हुए रावण के पास शिकायत लेकर गये। रावण ने फिर अनेक वीरो के साथ अक्षय कुमार को भेजा। उसे आता देख हनुमान जी एक वृक्ष लेकर दौड़े और उसे अक्षय कुमार पर दे मारा तथा बड़ी जोर से गर्जना की।

दोहा—कछु मारेसि······बल भूरि।

शब्दार्थः—मारेसि=मार डाला। मर्देसि=मसल दिया मरकट=बन्दर। बल भूरि=बड़ा शक्तिशाली।

भावार्थः—हनुमानजी ने कुछ राक्षसों को मारडाला कुछ को मसल दिया और कुछ को धूल में ही मिला दिया। जो थोड़े से बच रहे वे रावण के पास जाकर बोले कि हे स्वामी वह बन्दर तो बहुत ही अधिक शक्तिशाली है।

चौपाइयांः—सुनि सुत बध·······लइ गयऊ॥

शब्दार्थः—लंकेश=रावण। रिसाना=क्रोधित हुआ। अतुलित=बहुत बड़ा। इन्द्रजीत=इन्द्र को जीत लेने के कारण मेघनाद का नाम इन्द्रजीत भी था। निधन=मृत्यु। ब्रह्मबान=ब्रह्माजी के मन्त्र द्वारा चलाया जाने वाला तीर। परतिहु=गिरते समय। कटकु=सेना। नाग पास=एक प्रकार से बांधा जाना

भावार्थः—अपने पुत्र की मृत्यु सुनकर रावण को बहुत अधिक क्रोध हुआ और उसने बलशाली मेघनाद को बुला कर कहा कि हे पुत्र उस बन्दर को तुम मार मत डालना किन्तु जीवित ही उसे मेरे पास ले आओ मैं उसे देखना चाहता हूं। यह सुन कर अत्यन्त बलवान मेघनाद जो अपने भाई की मृत्यु के कारण अधिक क्रोधित भी था हनुमानजी के पास गया। उसने उन्हें ब्रह्मबाण मारा। उस बाण को देख कर हनुमान मूर्छित होकर गिर पड़े और गिरते समय भी उन्होंने सेना को अपने विशाल शरीर द्वारा चकनाचूर कर दिया। उन्हे बेहोश देख मेघनाद उनको नागपाश में बांधकर रावण के समीप ले गया।

पृष्ठ ४२। दोहा—कपिहि ······ देहु लगाय ॥

शब्दार्थ—बिलोकि=देखकर। दसानन=दस मुखों वाला रावण। बिहसा=हंसा। दुर्वाद=गाली। सुरति=स्मरण याद। बिषाद=दुःख। ममता=प्रेम। पावक=अग्नि।

भावार्थ—पहिले तो हनुमानजी को देखकर रावण ने हंसकर उन्हें दुर्वचन कहे किन्तु जब उसे पुत्र की मृत्यु की याद आई तो उसके हृदय में दुःख हुआ। उसने सभा के लोगों को समझाकर कहा कि बन्दर को अपनी पूंछ से विशेष प्रेम होता है अतः कपड़े को तेल में डुबोकर उसकी पूंछ से बांध दो और आग लगा दो।

चौपाइयां—जातुधान ······· निसाचर नारी।

शब्दार्थ—जातुधान=राक्षस। बचना=वचन, बात। मूढ़=मूर्ख। कौतुक=तमाशा। पुरवासी=नगर में रहने वाले।

निवुकि=खिसककर, छूटकर। कनक=सोना। सभीत=भय सहित। निसाचर नारी=राक्षसों की स्त्रियां।

भावार्थ—मूर्ख राक्षस रावण का ही बताया हुआ काम करने लगे। लंका नगर के निवासी भी यह तमाशा देखने आ पहुँचे। वे तरह तरह से हनुमानजी की मजाक उड़ाने लगे और लातें मारने लगे। अग्नि लगते ही हनुमानजी छोटा सा रूप बनाकर उन सबके चंगुल से छूट गये और सोने की अटारियों पर चढ़ गये। यह देखकर राक्षसियां तो बहुत ही अधिक डर गईं।

दोहा—हरि प्रेरित ·········लाग अकास।

शब्दार्थ—हरि प्रेरित=भगवान की इच्छा द्वारा। मरुत उनचास=वायु के उनन्चास देवता। अट्टहास=भयानक हंसी।

भावार्थ—भगवान राम की इच्छा से उसी समय वायु का वेग भी बहुत अधिक बढ़ गया। हनुमानजी ने भी बहुत विशाल रूप बना लिया और वे जोर से हँसे।

चौपाइयां—देह बिसाल ········सिन्धु मझारी॥

शब्दार्थ—हरुआई=हलकापन। बिहाला=दुर्दशा। कराला=भयानक। सिन्धु=समुद्र। मझारी=में। मन्दिर=मकान।

भावार्थ—उनका शरीर विशाल होने पर भी हलका था। वे एक मकान से कूदकर दूसरे पर चढ़ जाते थे। इस प्रकार उन्होंने अपनी पूंछ की आग द्वारा सारे नगर को जला डाला। आग की तेज लपट बहुत ही भयानक थी और वहां के निवासियों का बहुत बुरा हाल हो गया था। इस प्रकार यहां वहां

घूस घूस कर हनुमानजी ने सारी लंका जला डाली और उन्होंने समुद्र में कूदकर अपनी पूंछ की आग बुझाली।

दोहा—पूंछि बुझाई·········कर जोरि।

शब्दार्थ—श्रम=मिहनत। बहोरि=फिरसे।

भावार्थ—अपनी पूंछ बुझाकर उन्होंने अपनी थकान को दूर किया और वे फिरसे अपना छोटा रूप बनाकर हाथ जोड़कर सीता जी के सम्मुख जा पहुँचे।

चौपाई—मातु मोहिं···········लयऊ।

भावार्थ—हनुमानजी बोले कि माता आप मुझे अपनी कोई निशानी अवश्य दीजिए। भगवान राम ने उन्हें अपनी अंगूठी दी थी और सीताजी ने उन्हें अपने हाथ का चूड़ामणि नामक आभूषण दे दिया। हनुमान ने आनन्द पूर्वक उसे ले लिया।

दोहाः—जनक सुतहिं·······कीन्ह।

भावार्थः—श्री सीताजी को उन्होने अनेक प्रकार से धीरज दिलाया और समझाया। और वे सीताजी के कमल के समान सुन्दर चरणों को नमन कर राम के समीप पहुँच गये।

चौपाइयां—(लंका काण्ड) रिपु के समाचार········कोसलाधीस)

भगवान राम ने बालि पुत्र अंगद को रावण के समझाने के लिये लंका में भेजा था। किन्तु रावण ने अंगद की एक भी

बात न मानी। अंगद क्रोधित होकर रावण के यहां से रामचन्द्र जी के समीप आगये और उनसे लंका के समाचार कह सुनाये इसी के आगे की कथा का वर्णन इन चौपाइयो में आई है।

शब्दार्थ—रिपु=शत्रु। सचिव=मंत्री। अनी=सेना। कटकु=बन्दरों का कुल समूह। जूथप=सेना नायक। सिंहनाद=जोर की गर्जना।

पृष्ठ ४३-४४। अपने शत्रु रावण के सभी समाचार भगवान राम ने अगद द्वारा सुने। उन्होने अपने सभी मंत्रियों को बुलाया। उन्होने उनसे भली भांति सलाह कर बन्दरो के सारे समूह को चार सेनाओ में बांट दिया। योग्यता के अनुसार सेनापतियो को बनाया। उन सेनापतियो ने सारे सेना नायको को बुलाया और भगवान की महिमा का बखान किया। सुनते ही सारे बन्दर घोर गर्जना कर दौड़े। रीछ और बन्दर कौशलाधीश राम की जय कहते हुये कूदने और चिल्लाने लगे।

दोहा:— जयसियाराम .... महाबलसींव ॥

शब्दार्थ —कपीस=बन्दरों के राजा। केहरि नाद=सिंह के समान गर्जना। सींव=सीमा। जयति=जय हो।

भावार्थ :—बन्दर और रीछ राम, लक्ष्मण और सुग्रीव की जय जयकार बहुत ही ऊंचे स्वर से करने लगे। वे बन्दर और रीछ महान शक्तिशाली थे।

चौपाइयां :—लका भयऊ .... गिरिखंडा।

शब्दार्थ—कोलाहल=हलचल, गड़बड़ी। अहंकारी=घमण्डी। बनरन्ह=बन्दरो को। ढिठाई=उपद्रव। आयसु=आज्ञा। वर=श्रेष्ठ। भिंडिपाल=एक प्रकार का शस्त्र। परिध= =खास प्रकार का तीर। परशु=फरसा। सूल=त्रिसूल। कृपान=तलवार। गिरिखण्ड पर्वत के टुकड़े।

भावार्थ—लंका में बन्दरों और भालुओं को आते देख बड़ी गड़बड़ मच गई और घमण्डी रावण ने भी यह बात सुनी। उसने हंसकर राक्षसी सेना बुलाई और कहा इन बन्दरो को उनके ऊधम का मजा चखा दो। हे वीरो, तुम चारों दिशाओं में जाओ और बन्दरो और भालुओं को खा जाओ। वे राक्षस रावण की आज्ञा ले भिंडिपाल, श्रेष्ठ सांगी, तोमर, मुगदर, प्रचन्ड; परिघ, शूल, कृपाण, फरसे और पर्वत के टुकड़े लेलेकर दौड़े।

दोहा—नानायुद्ध·······रनधीर॥

शब्दार्थ—नाना युध=अनेक प्रकार के हथियार। जातुधान=राक्षस। कंगूरन्हि=महलों के ऊपरी भाग पर। कोटि=करोड़। रनधीर=युद्ध में धीरज रख कर लड़ने वाले। सर चाप=धनुष बाण।

भावार्थ—युद्ध में वीर राक्षस करोड़ों की संख्या में अनेक प्रकार के शस्त्र, धनुष और बाण ले लेकर महलो के ऊपरी हिस्सो पर चढ़ गये।

चौपाई—उत रावन·······चलावइहिं।

शब्दार्थ—दोहाई=सौगन्ध, कसम। लराई=युद्ध। सिखर=पर्वत की चोटियां। ढहावहिं=नीचे गिराना।

भावार्थ—राक्षस रावण की, और बन्दर और भालु राम की सौगन्ध और जय जय की आवाज कर युद्ध करने लगे। राक्षस लंका के ऊपर पर्वत के टुकड़े नीचे लुढ़काने लगे, जिन्हें बन्दर कूद कर पकड़ लेते थे और फिर से राक्षसो के ऊपर ही फेंकते थे।

छन्द—धरिकुधर ·······गावत भये।

शब्दार्थ—धरि कुधर=रख रख कर। खण्ड प्रचन्ड=पर्वत के पैने बड़े बड़े टुकड़े। महि=पृथ्वी पर। प्रचारही=मारते हैं। तरस=चपल, चन्चल। तरुण=जवान। तमकि=क्रोधकर। जसु=यश।

भावार्थ—बड़े बड़े पैने पर्वत ले लेकर बन्दर और भालु लंका के किले पर फेंकने लगे। राक्षसो को पैर पकड़ कर जमीन पर पटक देते थे और दौड़ कर फिर उन्हें बार बार मारते थे। जो जवान और चन्चल भालू और बन्दर थे वे चिल्लाकर और क्रोध मे आकर किले पर चढ़ गये। लंका के महलो में चढ़कर वे यहां वहाँ घूमने लगे और श्री राम का यश गाने लगे।

चौपाइयां—कहइ दशानन ·······दोहाई॥

शब्दार्थ—सभट्टा=वीरो। मर्दहु=मसलडालो। ठट्टा=झुण्ड। भूप=राजा।

भावार्थ—रावण ने कहा हे वीर राक्षसो तुम भालुओं और बन्दरों के झुण्डों को मसल डालो। मैं उन दोनों राजकुमारो को मारूंगा। ऐसा कह उसने अपनी सेना को आगे बढ़ाया। यह समाचार बन्दरों ने सुना और वे श्रीराम का नाम ले लेकर दौड़े!

(पृष्ठ ४४) छन्दः—धाये ·······बखानहीं।

शब्दार्थ—कराल=भयंकर। सपच्छ=पंखो सहित। दसन=दांत। महा द्रुमायुध=बड़े बड़े वृक्षो का ही हथियार। संक=भय। भूधर=पवत। वृन्द=झुण्ड। मत्त-गण=मस्त हाथी। मृगराजु=सिंह।

भावार्थ—बड़े आकार वाले भयंकर बन्दर और भालु साक्षात् मृत्यु के समान मालूम हो रहे थे। ऐसा मालूम होता

था कि पंखों सहित अनेक प्रकार के बड़े बड़े पर्वतों के ही झुण्ड उड़े जा रहे हैं। वे अपने नाखून और दांतों से बड़े बड़े पर्वतो और वृक्षों को ही हथियार बना कर लड़ते थे और थोड़ा भी भय नहीं खाते थे। रामचन्द्रजी को मदमस्त हाथी के समान रावण को मारने के लिये सिंह के समान कहते थे और उनकी प्रशसा करते थे।

दोहा—दुहं दिसि ·······बखानि ॥

भावार्थ—दोनो ओर के वीर जय जय आवाज कर अपने जोड़ी दारो से भिड़ गये। बन्दर रामचन्द्र का और राक्षस रावण का यश गा गाकर युद्ध करने लगे।

चौपाइयां—रावनु रथी ·······रिपुताके।

शब्दार्थ—रथी=रथ मे सवार। विरथ=बिना रथ के। पद त्राता=जूते। जितव=जीतेंगे। स्यन्दन=रथ। ध्वजा पताका=झण्डा। चाका=चका। रजु=लगाम। सारथी=हांकने वाला। सुजाना=बुद्धिमान। विरति=वैराग्य। कोदंडा=धनुष। तीर=तरकश। सिली मुख=खास प्रकार के बाण। कवच=लोहे का वस्त्र। विप्र=ब्राह्मण।

भावार्थ—रावण को रथ में सवार और श्रीराम को रथ रहित देखकर विभीषण अधीर हो उठे। अत्यन्त प्रेम के कारण उनके हृदय में भय हो आया और वे रामचन्द्रजी के चरणो मे प्रणाम कर प्रेम सहित बोले। हे स्वामी, आपके शरीर पर न तो कवच है और न पैरो में जूते हैं। आप किस प्रकार उस बलवान वीर को जीतेंगे। यह सुन कर परम दयालु श्रीरामजी बोले कि हे मित्र जिस रथ द्वारा विजय प्राप्त होती है। उसका वर्णन मैं करता हूँ। धैर्य ही उस रथ का चका है। सत्य और शील ही उसकी दृढ़ पताका है। शक्ति, ज्ञान, इन्द्रियों को वश में रखना,

दूसरेकी भलाई; क्षमा, दया और समता इत्यादि गुणों द्वारा ही उसकी लगाम बनाई गई है। ईश्वर का भजन ही मानो उस रथ को हांकने वाला है। वैराग्य और संतोष तलवार हैं। दान फरसा है और बुद्धि की प्रचण्ड शक्ति है। श्रेष्ठ ज्ञान ही कठिन धनुष है। शुद्ध और स्थिर मन ही तरकश है। संयम और नियम अनेक प्रकार के बाण हैं। भेदा न जा सकने वाला लोहे का कवच ब्राह्मण और गुरु की पूजा है। इस प्रकार के रथ द्वारा जो विजय मिलती है। वह किसी दूसरे साधन से नहीं प्राप्त की जा सकती। हे मित्र यह धर्मयुक्त रथ जिसके पास है, उसे जीतने वाला दुनिया में कोई भी शत्रु नही मिल सकता।

दोहा—महा अजय ········ प्रभु आन।

शब्दार्थ—अजय=न जीता जा सकने वाला। मति धीर =बुद्धिमान। पदकज=कमल के समान चरण। सुख पुंज= आनन्द के समूह।

रामचन्द्रजी बोले कि हे मित्र इस कठिन ससार रूपी शत्रु को जीतने वाला ही वास्तव में वीर है। ऐसा वीर वही हो सकता है जिसके पास ऊपर बतलाया हुआ रथ है। प्रभु के यह शब्द सुनकर विभीषण ने आनन्द में भरकर श्रीराम के चरण-कमल पकड़ लिये और बोले हे आनन्दरूप प्रभो आपने मुझे इस रथ का वर्णन कर मुझे बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया।

पृष्ठ ४५। राक्षसों की ओर रावण और इधर अंगद और हनुमान ने घोर युद्ध शुरू कर दिया। अपने अपने स्वामी का नाम ले राक्षस और बन्दर युद्ध करने लगे।

छन्द—क्रुद्ध=क्रोधित हुए। कृतान्त=यम। सोनित= खून। सवत=टपकता हैं। घन=बादल। गाजही=गर्जना

करते हैं। चिक्करहिं=चीखते है। छीरहिं=नष्ट कर देते हैं। विदारहिं=चीर डालते हैं। अतावरि=आंतें।

भावार्थ—खून में लसे हुए बन्दरों ने यम के समान क्रोध किया। बादलों की गर्जना के समान चिल्ला-चिल्लाकर वे वीर राक्षसों को मसलने लगे। किसी को चपेटकर मार डालते थे। किसी को दांतों से काटते थे और किसी को लातों से रौंद डालते थे। छल करने वाले राक्षसों को चिल्ला चिल्लाकर भालु और बन्दरों ने शक्तिहीन बना डाला। वे राक्षसों के गाल फाड़ देते थे। हृदय को छेद देते थे और उनकी अंतड़ियां निकाल लेते थे।

चौपाइयां—सायक······मुकुन्दा ॥

शब्दार्थ—सायक=तीर। नाभिसर=रावण की नाभि में रहने वाला अमृत। अपर=दूसरे। नाराचा=वाण। रव=आवाज। छुभित=हिलने डुलने लगा। दिग्गज=पृथ्वी को साधने वाले चारों दिशाओं के हाथी। चापि=दबाकर। सुमन=फूल। मुनि वृन्दा=मुनियों का समूह। मुकुन्दा=भगवान का नाम।

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजी ने एक वाण से रावण की नाभि का अमृत सुखा दिया। दूसरे वाणों ने उसके सिर और हाथों को काट डाला। नाराच नामक वाणों द्वारा उसके अनेक हाथ और सिर कट गये। और वह सिर और भुजाओं से रहित होकर घूमने लगा। उसके प्रबल वेग के दौड़ने से पृथ्वी धँस जाती थी। तब श्री राम के एक वाण ने उसके दो टुकड़े कर दिये। मरते समय उसने बड़ी भयंकर गर्जना की और बोला कि वह राम कहां है मैं उसका वध करूंगा। उसके गिरने पर पृथ्वी कांपने लगी समुद्र और पृथ्वी को धारण करने वाले

हाथी भी घबड़ा गये। रावण ने शरीर के वे दो भाग बड़े बड़े बना लिये थे। इसलिये अनेक रीछ और वानर उसके नीचे दब गये। आकाश से देवता और मुनि फूल बरसाने लगे और भगवान की जय जयकार करने लगे।

[आगे का प्रसग श्री राम के युद्ध विजय कर अयोध्या लौट आने के बाद का है। उनके राज सिंहासन पर बैठते समय का वर्णन है]

दोहा—सुमन ······ वृन्द।

शब्दार्थ—वृष्टि=वर्षा। नभ सकुल=भरा हुआ आकाश सुख कन्द=सुख रूप।

भावार्थ—श्रीराम को अपने महलों में जाते देख देवताओं ने पुष्प वर्षा द्वारा आकाश को फूलों से भर दिया। नगर के स्त्री पुरुष अटारियो पर चढ़कर उनकी शोभा देखने लगे।

चौपाईयां—कंचन कलस ········दिन करके।

शब्दार्थ—कन्चन=सोना। केतू=झण्डा। मगल हेतु=शुभ कार्य होने के लिए। बीथी=सड़कें। गजमनि=मोती। निसान= ढोल। आरत हर=कष्ट दूर करने वाले। रघुकुल कमल विपिन दिनकर के=रघुवश रूपी कमल के वन को राम-चन्द्रजी सूर्य के समान सुख देने वाले थे।

भावार्थ—नगरवासियो ने सोने के कलशो को सजा सजाकर अपने अपने दरवाजो पर रखा। शुभ कार्य होने के लिए उन्होने बन्दनवार, झडे झडियो से तरह तरह की शोभा बनाई। समस्त सड़को पर सुगन्धित पदार्थों को सींचा गया। मणियो द्वारा चौक पूरे गये। इसी प्रकार की अनेक शुभ वस्तुओ से नगर सजाया गया। बड़े ही आनन्द पूर्वक बाजे भी बजने

लगे अनेक स्थानो पर स्त्रियां न्यौछावर करने लगीं और लेने वाले दरिद्र उन्हें आशीर्वाद देने लगे। सोने के थालों में आरती सजा कर युवतियां मंगलगीत गाने लगीं। उन्होंने कष्टों को हरने वाले और रघुवंश को सुख देने वाले श्री राम के गुण गाना प्रारम्भ कर दिया।

दोहा—नारि..............राकेश।

शब्दार्थ—कुमुदिनी=रात्रि को ही खिलने वाला एक पुष्प। अवधसर=अयोध्या रूपी तालाव में। दिनेस=सूर्य। विगसत=फूलना। राकेश=चन्द्रमा।

भावार्थ—गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि स्त्रियां कुमुदिनी हैं जो अवधरूपी तालाव में श्रीराम के विछोह के अन्त हो जाने अर्थात् उनके दुबारा अयोध्या में दर्शन प्राप्त कर प्रफुल्लित अर्थात् प्रसन्न हो गईं।

टिप्पणी—कुमुदिनी रात्रि को ही खिलती है। उसे चंद्रमा से प्रेम है। अतः सूर्य के अस्त होने पर वह खिलती है। यहां पर स्त्रियां कुमुदिनी, अवध तालाव, श्रीराम का वियोग सूर्य और उनके दर्शन ही चन्द्रमा हैं।

चौपाइयां—कृपा सिन्धु.......करीजै॥

शब्दार्थ—कृपासिन्धु=अत्यन्त दयालु। द्विज=ब्राह्मण सुवरी=शुभ वड़ी। अनुशासन=आज्ञा। अभिराम=मन को आनन्द देने वाले। अभिषेका=तिलक।

भावार्थ—जब असीम दयावान श्री राम अपने महलों में गये तो नगर के स्त्री पुरुष वहुत ही आनन्दित हुये। गुरु वशिष्टजी ने ब्राह्मणों को बुलाकर कहा कि आज का दिन और यह घड़ी बहुतही मंगलकारक है। अतः आप सभी प्रसन्न होकर श्रीराम को राजगद्दी पर बैठने की आज्ञा दीजिये। वशिष्टजी

मुनि के ये सुन्दर बचन ब्राह्मणों को बहुत ही प्रिय लगे। वे कोमल वाणी मे कहने लगे कि सम्पूर्ण जगत को आनन्द देने वाले भगवान राम का तिलक अवश्य ही होना चाहिये और हे मुनियो मे श्रेष्ठ वशिष्ठजी आप शीघ्र ही उनका तिलक कर दीजिये।

दोहा—राम राज्य ·······नाहिं।

शब्दार्थ—बिहगेस=पक्षिराज गरुड़। सचराचर=जड़ और चेतन। करम=कर्म। कृत=मनुष्यो द्वारा हुए।

भावार्थ—[रामायण की कथा श्री काग भुशुन्डिजी ने गरुड़जी को सुनाई है। अतः यहां गरुड़जी को सम्बोधन कर काग भुशुन्डिजी कह रहे हैं]

हे गरुड़ श्री रामके राज्य मे सम्पूर्ण जगत में काल, कर्म, स्वभाव और गुण से किया दुःख किसी को पीड़ित नही कर पाता था। अर्थात मनुष्यो को किसी प्रकार का दुःख अथवा कष्ट नहीं था।

चौपाइया—भूमि सप्त ······· हितकारी।

शब्दार्थ—सुमेखला=कमर का सुन्दर आभूषण। भुवन=विश्व, ब्रह्माण्ड। प्रभुता=महिमा। घनेरी=बहुत। हीनता=कमजोरी। रतिमानी=प्रेम किया। बरद=वर देने वाले। संपदा=सम्पत्ति। फनीस=पृथ्वी को धारण करने वाले शेष। सारदा=सरस्वती।

भावार्थ—सात द्वीपो वाली और समुद्र से घिरी रहने वाली सम्पूर्ण पृथ्वी के कौशलपति राम ही एक मात्र राजा थे। यह उनको कोई बड़ी महिमा नहीं है क्योकि वास्तव में तो वे भगवान ही हैं जिनके एक एक रोम में अनेक विश्व भरे पड़े हैं। उस महिमा का स्मरण करने पर रामराज्य की महिमा तो बहुत

ही तुच्छ मालूम पड़ती है। हे गरुड़ जी जिसने रघुनाथ जी की यह महिमा जानली उसे उन चरित्र से अवश्य ही प्रेम हो जाता है। वर देने वाले बुद्धिमान मुनियों ने कहा है कि उस महिमा के जान लेने से श्री राम के चरित्रों में प्रीति होती है। उनके राज्य की सुख और सम्पत्ति का वर्णन शेषभगवान और सरस्वती भी नहीं कर सकतीं। उस राज्य में सभी स्त्री पुरुष दयालु दूसरों की भलाई करने वाले, और ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करने वाले थे। पुरुष केवल एक ही स्त्री से विवाह करते थे। और स्त्रियां भी मन, वचन और कर्म से अपने पति की ही सेवा किया करती थीं।

(पृष्ठ ४७) पाइ न केहि······नमामिते।

शब्दार्थ—सठ=दुष्ट। पतित पावन=पापियों को पवित्र करने वाले। आभीर, यवन किरात=नीच और दुष्ट जातियां। अघ=पाप।

भावार्थ—गोस्वामी तुलसीदासजी अपने मनको सम्बोधित कर कहते हैं कि पापियों का उद्धार करने वाले राम ने गनिका नामक वेश्या, अजामिल नामक एक पापी पुरुष, एक बहेलिया, जटायु और गजेन्द्र को मुक्ति प्रदान की। आभीर, यवन, किरात, खल, और चाण्डाल इत्यादि नीच और बुरे कर्म करने वालों को भी भगवान का नाम पवित्र कर देता है। ऐसे भगवान राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

दोहा—मो सम दीन·····भवभीर।

भावार्थ—मेरे समान दीन और आपके समान दीनों का हितकारी दूसरा नहीं है। ऐसा ही सोचकर हे रघुकुल में श्रेष्ठ श्रीराम मेरी संसार की कठिन परिस्थिति से छुटकारा दिलादो। अर्थात मोक्ष प्रदान करो।

(पद १.)

पृष्ठ ४६ । अबलौं नसानी ·········बसैहों ।

शब्दार्थ—नसानी=उम्र नष्ट की । सिरानी=अन्त हो गया । हसैहौं=कटवाना । चारु=सुन्दर । चिन्तामनि=वह मणि जिसके द्वारा सभी इच्छाएं पूरी हो जाती हैं । उर कर=हृदय रूपी हाथ । खसैहों=गिराना । सुचि=पवित्र । रुचिर=सुन्दर । कंचनहि=सोने को । मन.मधुकर=मनरूपी भौंरा । पन=प्रण कर ।

भावार्थ—गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि अब तक मेरी उम्र व्यर्थ ही नष्ट हुई । किन्तु अब श्रीराम की कृपा से इस रात्रि रूपी संसार की समाप्ति हो गई है । अब सचमुच मैं जाग गया हूँ और दुबारा उसके चगुल में नहीं आ सकता । मुझे चिन्तामणि के समान फलदायक रामनाम की प्राप्ति हो गई है और मैं उसे कभी भी अपने हृदय रूपी हाथ से गिरने न दूंगा । अर्थात् सदैव रामनाम को हृदय में ही रखूंगा । मैं अपने चित्त रूपी सोने को रामचन्द्रजी के पवित्र रूप को ही सुन्दर कसौटी पर कसूंगा । अर्थात् मेरा मन यदि राम के रूप मे भलीभांति अनुरक्त हो गया तो मैं समझ लूंगा कि मेरा हृदय अब पवित्र हो गया है । अब मैं अपनी इन्द्रियो को अपने वश में ही रखूंगा ताकि कोई भी मुझ पर न हंस सकेगा । मैं अब प्रण करके अपने मन रूपी भौंरे को श्रीराम के चरण रूपी कमल में ही बसा रखूंगा । अर्थात् निरन्तर उनका ही चिन्तन करता रहूँगा ।

(पद २.)

कबहुँ कहौं·················लहौंगो ।

शब्दार्थ—हौं=मैं । रहनि=जीवन, रहने का ढंग । विरत=लगे रहना । नेम=नियम । परुष=कठोर । स्रवन=

कान। पावक=अग्नि। दहौंगो=जलाऊँगा। विगतमान=अभिमान रहित। परिहरि=त्याग कर। अविचल=निश्चल, स्थिर।

भावार्थ—गोस्वामी तुलसीदासजी कामना करते हैं—मेरे इस जीवन में सद्गुणों का अविर्भाव हो जावे। परम दयालु श्री राम की कृपा से मेरा स्वभाव दुष्टता छोड़कर साधुओं के समान हो जावे। जो कुछ भी प्राप्त हो जावे उसी में संतुष्ट रहूं और किसी से भी कुछ चाहने की इच्छा ही न हो। मन, वाणी और कर्म से सदा ही दूसरो की भलाई में रहने का ही नियम ले लूं। दूसरों के कठोर शब्दों को सुनकर भी उनको अपनी वाणी रूपी अग्नि से न जलाऊं। मेरा मन अभिमान रहित; समता और धैर्य युक्त हो जावे और मैं दूसरो के गुण और दोषो पर ध्यान देना ही छोड़ दूं। दुःख और सुख मे समता की बुद्धि रखकर देह की समस्त चिन्ताओं को त्याग दूँ। तुलसीदास जी कहते है कि हे प्रभो मेरा जीवन ऐसा हो जावे कि मैं सत्पथ पर चलकर आपकी निश्चल भक्ति प्राप्त कर लूं।

(पद ३.)

जाके प्रिय न राम वैदेही·······ऐतो मतो हमारो॥

शब्दार्थ—वैदेही=सीता। कोटि=करोड़। नाह=पति। ब्रज बनितन्हि=ब्रज की गोपियो ने। मनियत=मानना चाहिये सुहृद=प्रेमी। सुसेव्य=सेवा करने योग्य। एतो=इतना। मतो=मत विचार।

भावार्थ—जिसको सीता और राम से प्रेम न हो उसे अपना परम हितैषी होने पर भी दुश्मन की ही तरह त्याग देना चाहिये। प्रहलाद ने अपने पिता को, विभीषण ने अपने भाई को और भरत ने अपनी माता का परित्याग इसलिये किया था

कि वे भगवान से विमुख थे। राजा बलि ने अपने गुरु और गोपियों ने अपने पतियों को त्याग कर जगत के सामने मंगल कारी आदर्श रखा है। रिश्ता और प्रम राम के ही सम्बन्ध से मानना उचित है। राम का भक्त होने पर ही कोई व्यक्ति अपना स्नेही और पूज्य बन सकता है। ऐसे अंजन का भला क्या काम जिससे आंखें ही फूट जांय अर्थात ऐसे व्यक्ति जिनके द्वारा हमें भगवान की प्राप्ति में बाधा पहुँचती है सर्वथा ही त्याज्य है। गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं कि सब प्रकार से पूज्य और प्राणो से प्यारा वही बन सकता है जिसके द्वारा हमारे मनमें श्रीराम की भक्ति जागृत हो जावे। बस मेरा विचार तो यही है।-

टिप्पणी—भक्त मीरा के कुटुम्बीजन मीरा को कृष्ण भक्ति छोड़ देने के लिये कहते थे। मीरा ने तुलसी दास जी के पास एक पत्र लिख कर अपना कर्त्तव्य पूछा था। गोस्वामी जी ने उक्त पद में उन्हें अपना उत्तर भेजा था।

(पद ४.)

ऐसी मूढता या मन की········आनन की।

शब्दार्थ—आस=आशा। धूम=धुआं। तृषित=प्यासा लोचन=आंख। स्येन=बाज। अहार=भोजन। आनन= मुख।

भावार्थ—तुलसी दास जी कहते हैं कि इस मन की मूर्खता तो देखो ! यह रामचन्द्रजी की गंगाजी के समान आनन्द दायिनी भक्ति को छोड़ कर ओस के कणों पर आशा लगाता है। अर्थात संसार की तुच्छ वस्तुओं द्वारा आकर्षित हो जाता है। प्यासा चातक जिस प्रकार धुएं के समूह को देखकर उसे बादल समझ बैठता है। उसे वहा पर शीतलता और जल तो प्राप्त नहीं होता उल्टे नेत्रों को ही कष्ट होता है। बाजपक्षी

शीशे में अपने शरीर की परछाईं को देख दूसरी चिड़िया समझ उसे खाने के लिये झपट पड़ता है और अपनी चोंच ही तोड़ लेता है। इसी प्रकार यह मन संसार की वस्तुओं में सुख जान कर उनकी प्राप्ति के प्रयत्न करता है पर अन्त में उसे दुःख की ही प्राप्ति होती है।

(पद ५.)

पालने रघुपतिहि झुलावैं ······ सुजस बरनत बरबानी

शब्दार्थ—कल = मधुर। केकि कंठ द्युति = मोर की गर्दन के समान रंगवाली कांति। वपु = शरीर। अलकैं = बालों की लटें। ललित = सुन्दर। लटकन = लटकना। भ्रू = भौंह। नलिन = कमल। बदन = मुख। पल्लव = पत्ते। सुभग = सुन्दर। जुग = दो। भुजग = सर्प। जलज = कमल। सुधा = अमृत। सचुपावैं = आनन्द प्राप्त करना। अनूप = अद्भुत। पानि = हाथ। अंभोज = कमल। उभय = दोनों। अरुन = सूर्य। विधु त्रास = चन्द्रमा के डर से। आरत = दीन होकर। श्रुति = वेद। ऋचा = वेद मन्त्र। बिसद = स्पष्ट, विस्तार युक्त। बरबानी = श्रेष्ठ वाणी द्वारा। नाल = [illegible]। अलि = भौंरा।

चन्द्रमा में से कमलों द्वारा अमृत लेकर सुख पा रहे हैं। (यहां पर राम का मुख चन्द्रमा, उनके पैर सूर्य और हाथ कमल हैं) पालने पर टंगे हुए विचित्र खिलौने को देखकर श्रीराम किलक किलककर अपने हाथ ऊपर फैलाते हैं तब ऐसा मालूम होता है कि मानों उनके दोनों कर कमल उनके मुख रूपी चन्द्रमा से डर कर सूर्य से विनय कर रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि उनके सिर की सुगन्धि के कारण भौंरे गुंजार कर रहे हैं और बड़ी ही शोभा हो रही है। ऐसा मालूम होता है मानो सारे वेद और मंत्र ही भौंरों का रूप धारण कर भगवान का विस्तार पूर्वक यश वर्णन कर रहे हैं।

(पद ६.)

हरि को ललित बदन निहारु ॥

.... नन्द-कुमारु ।

शब्दार्थ—निपट=व्यर्थ। लकुट=छड़ी। डारु=छोड़ दो। मंजु=सुन्दर। सुधा सिगारु=अमृत। दधि वुन्द=दही की बूंदे। अपनपो बारु=सुध वुध भूलना। मरकत=मणि का पहाड़। तुपारु=कुहरा।

भावार्थ—यशोदा जी श्रीकृष्णजी को मार रही थी यह देख एक गोपी उनसे कहती है यशोदा तू कृष्ण के सुन्दर मुख की ओर तो देख। तू अपने हाथ की छड़ी फेंक दे। तू व्यर्थ निष्ठुर होकर कृष्ण को डांट रही है। उनके सुन्दर नेत्रों से अंजन मिले हुये आंसू गिरते हैं। ऐसा मालूम होता है कि श्रीकृष्ण के प्रेम में मग्न होकर चन्द्रमा अमृत टपका रहा हो। कृष्ण की सुन्दर छाती पर दही के बूंद को देख कर अपनी सुध वुधि भी भूल जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मणि के कोमल शिखर के आसपास कुहरा छाया हुआ है। (यहां पर

दही का बूँद ही मरकतमणि के पर्वत का शिखर है और कृष्ण के नीले रंग का वक्ष स्थल ही कुहरा है) हे यशोदा तू सोच तो सही कि तू कृष्ण पर ही क्रोधित हो रही है। तुलसी दास जी कहते हैं कि कृष्ण को देखकर भी तेरा क्रोध दूर क्यों नहीं हो जाता ?

(पृष्ठ ५१) सवैये—(१) अवधेस के द्वारे·······सरोरुह से विकसे।

शब्दार्थ—अवधेश=दशरथ। सकारे=प्रातःकाल। अवलोकि...देखकर। सोच विमोचन=चिन्ता दूर करने वाले धिक=धिक्कार। खजन=एक चंचल पक्षी। सररुह=कमल।

भावार्थ—अयोध्या की एक स्त्री कहती है—मैंने प्रातः काल दशरथ जी के दरवाजे पर जाकर देखा कि राजा दशरथ गोद में बालक राम को लिये हुये हैं। मैं उन आपत्तियों को दूर करने वाले श्री राम को देख कर चकित सी होकर रह गई। वे मनुष्य सचमुच धिक्कारने योग्य हैं जिन्हें राम का रूप आकर्षित नहीं कर सके। तुलसी कहते हैं कि वह स्त्री कहती है कि हे सखी मनको आनन्द देने वाले अंजन लगे हुए उनके नेत्र- खंजन के समान चन्चल और सुन्दर थे। मालूम होता था कि उनके मुख रूपी चन्द्रमा में दो समसरवभाव वाले नीले रंग के कमल रूपी नेत्र ही खिल गये है।

(२) तनकी दुति·······मंदिर में विहरै।

मञ्जुलताई=सुन्दरता। भूरि=अनेक। अनंग=कामदेव दामिन=बिजली।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दशरथजी के आंगन मे खेलते हुए उनके चार बालक सदा मेरे मन रूपी मन्दिर में खेला करें। उनके शरीर की कांति कमल की सुन्दरता और नेत्र

उसकी कोमलता को फीकी बना देते हैं। वे सुन्दर बालक धूल में भरे हुए बहुत सुन्दर बालक भी उनके सामने कुछ भी नहीं है। उनके छोटे छोटे दांतों की चमक बिजली के समान है। वे किलक किलक कर बाल क्रीड़ा कर रहे हैं।

पृष्ठ ५१-५२। (३) बरदंत की ········ बोलन की।

पंगति=पक्ति। कुन्द=सफेद फूल। अधराधर=ओंठ। चपला=बिजली। अमोलन=मूल्यवान।

भावार्थ—श्वेत पुष्प की कली के समान श्रेष्ठ दांतों की पक्तियां बोलते समय दिख जाती हैं और दोनों ओंठ कोमल पत्तों के समान हिलते हुए मालूम पड़ते हैं। मोतियों की बहु-मूल्य माला के समान अथवा बादलों के बीच में बिजली की चमक के समान उन दांतों की शोभा है। मुख के ऊपर लटकने वाली घुंघराली लटों, सुन्दर गालों पर के कुण्डलो और उनके तुतले शब्दो पर तुलसीदास जी अपने प्राण ही न्योछावर कर देने को तैयार हैं।

(कवित्त ८)

(१) जिनकी पुनीत ········ न हंसई के ?

शब्दार्थ—पुनीत=पवित्र। बारि=गगाजी। पुरारि=शंकर। त्रिपथ गामिनि=तीनो मार्गो से जाने वाले। जसु=यश। जोगीन्द्र=श्रेष्ठ योगी। गौने सी=नई बहू की बिदा। खैहौं=खाऊंगा।

भावार्थ—(श्री रामचन्द्रजी के गंगा पार करते समय का वर्णन है। केवट नाव से पार उतारते समय भगवान से प्रार्थना करता है कि बिना पैर धोए आपको नाव पर नहीं चढ़ने दूंगा।)

जिनके चरणों से निकली हुई पवित्र गंगाजी को शंकरजी अपने सिर पर धारण किये रहते हैं। आकाश, स्वर्ग और पृथ्वी पर रहने वाली गंगा के यश वेद गाया करते हैं। श्रेष्ठ योगी और बड़े बड़े मुनि और देवता भी वैराग्य, जप और योग द्वारा जिनको अपने मन में बसाने की चेष्टा करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनके पैरों की धूल के स्पर्श से ही अहल्या तर गई और गौतमऋषि फिरसे अपनी पत्नी को नववधू के समान अपने घर ले गये। ऐसे चरण प्राप्त कर भला वह केवट बिना पैर धोए श्रीराम को नाव पर कैसे चढ़ने देता? ऐसा करने में उसे बड़ा ही अच्छा अवसर खो देना पड़ता और जगत् में भी उसकी हँसी ही होती।

(२) प्रभु रुख .... लखन तन हेरि हेरि।

शब्दार्थ—रुख=आज्ञा, संकेत। घरनिहि=पत्नी को। सानुराग=आनन्द में भरकर। असयानी=भोली। सुर=देवता।

भावार्थ—प्रभु रामचन्द्र की आज्ञा पाकर उस केवट ने अपने बच्चों और पत्नी को भी बुला लिया। उनके चरणों को उन्होने चारो ओर से घेर कर मानो कैदी ही बना लिया। एक छोटे से काठ के बर्तन में वह गंगा जल भर लाया और उनके चरणों को धोकर बार बार वह चरणामृत पीने लगा। तुलसीदासजी कहते हैं कि आनन्द युक्त देवता आकाश से फूल बरसाने लगे और जय जय ध्वनि करने लगे। केवट की अनेक प्रकार की प्रेम भरी हुई भोली भाली वाणी को सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण जानकी की ओर देखकर हंसने लगे।

दोहा १ से ४ तक। एक भरोसो ...... दुर्लभ दोई।

शब्दार्थ—स्वाति सलिल=स्वाती नक्षत्र में बरसा हुआ जल। चातक=मेघों से प्रेम करने वाला एक पक्षी (पपीहा)। घनश्याम=बादल। जांचै=याचना करता है, मांगता है। अम्ब=आम। पाहन=पत्थर। हनत=मारते हैं। असन वसन कपड़े बर्तन इत्यादि गृहस्थी के समान। सन्त समागम=साधुओं की सत्सगति। दुर्लभ=कठिन।

भावार्थ—(१) तुलसी दास जी कहते हैं कि मुझे सारा भरोसा, ताकत, आश और विश्वास भी राम पर ही है। रघुनाथ का यश स्वाती नक्षत्र के जल के समान है और मैं चातक पक्षी हूँ।

टिप्पणी—जिस प्रकार चातक अन्य जल नहीं पीता उसी प्रकार तुलसी दास भी राम को छोड़ कर और किसी पर विश्वास नहीं रखते।

(२) पपीहा एक श्रेष्ठ पक्षी है वह केवल स्वाती नक्षत्र में बरसा हुआ श्रेष्ठ जल ही पीता है। अन्य स्थानों का गंदा जल नहीं पीता। वह न तो स्वाती में बरसने वाले बादलों से याचना करता है और उनसे जल न मिलने पर अपने शरीर को भले कष्ट में पहुंचावे किन्तु अन्य जल पान नहीं करता। (सच्चे भक्त को चातक के समान ही संसार से विमुख हो ईश्वर मे प्रेम करना चाहिये)

(३) तुलसी दास जी कहते हैं कि आम का वृक्ष साधु स्वभाव वाला है। वह दूसरो की भलाई के लिये ही फलता और फूलता है। मनुष्य उस पर पत्थर चलाते हैं और वह उन्हें बदले में फल ही प्रदान करता है।

(सज्जन अपने कष्ट पहुँचाने वालों पर भी दया ही दिखाते हैं।)

(४) गृहस्थी की वस्तुएं पुत्र और स्त्री का सुख तो एक पापी के घर में भी पाया जाता है किन्तु साधुओं का संग और श्रीराम का नाम रूपी धन तो विरलों के ही पास मिलता है। इन दोनों का मिलन। सचमुच बड़ा ही कठिन है।

(५, ६, ७, ८) दोहे:—

शब्दार्थ—अघ = पाप। जयहान = हार जीत। सुजान = बुद्धिमान। बीज = मूल कारण। दुर्जन = दुष्ट। दर्पण = आइना। गौर = विचार। विमुख = पीछे। साहिब = स्वामी। उदधि = समुद्र। पावस = वर्षा। कोकिला = एक पक्षी होता है। दादुर = मेंडक।

भावार्थ—(५) मित्रता और शत्रुता, पाप और पुण्य, यश और अपयश, हार और जीत इन सबी का मूल कारण बातें करने के ढंग पर ही रहता है ऐसा बुद्धिमान तुलसीदास जी कहते हैं।

(३) दुष्ट मनुष्य का स्वभाव दर्पण के समान होता है। जिस प्रकार दर्पण के सामने रहने पर उसमें मुख दिखता है उसी प्रकार दुष्ट सामने रहने पर तो अच्छी बातें करता है किन्तु पीठ पीछे हमेशा दुःख पहुँचाने की चेष्टा किया करता है।

(७) स्वामी से सेवक का महत्व अधिक बढ़ जाता है यदि सेवक बुद्धिमान और अपने धर्म अर्थात कर्तव्य को भली भांति समझता हो। रामचन्द्रजी ने तो समुद्र बांध द्वारा पार किया किन्तु हनुमान जी ने उसे कूद कर ही लांघ गये।

(८) तुलसी दासजी कहते हैं कि अब अच्छा समय बीत गया। अब तो दुर्जनों का ही आदर सत्कार होने लगेगा। जिस प्रकार वर्षा ऋतु के आने पर मेंडकों की भरमार हो जाती है और कोयल मौन धारण कर लेती है उसी प्रकार अब मुझे भी शान्त जीवन ही बिताना पड़ेगा।

द्वितीय भाग

कबीर की साखी

(पृष्ठ ६१) गुरु गोविन्द .... दियो बताय ॥

शब्दार्थ—गुरु=साधन का उपदेश देने वाला, शिक्षक। गोविंद=ईश्वर; विष्णु। पांय=चरण।

भावार्थ—महात्मा कबीर गुरु की महत्ता बतलाते हुए बतलाते हुये कहते हैं कि मान लीजिये कि गुरुदेव और श्री विष्णु भगवान दोनो एक साथ उपस्थित हैं तो प्रथम दोनों में से किसकी वन्दना की जाय। यह एक बड़ी समस्या है। यद्यपि ईश्वर सर्वश्रेष्ठ और साध्य हैं किन्तु ईश्वर को प्राप्त करने का साधन तो गुरुजी ने ही बताया है अतः गुरुजी को ही ईश्वर मिलाने का श्रेय है। इसलिये भगवान से ज्यादा महत्ता सद्-गुरु की है और उन्हें ही सर्व प्रथम प्रणाम कर अभिवादन करना चाहिये।

साधारण अर्थ में हम यह भी कह सकते हैं कि जो हमे ज्ञान और शिक्षा देता है वह हमारा श्रद्धेय आदर का पात्र होना चाहिये।

(२) "माली आवत .... हमारी बार।"

शब्दार्थ—माली=बागवान, काल। कलियां=अर्धवि-कसित फूल, बोंड़ी। चुन लिये=तोड़ लिये। काल्हि=काल, भविष्य में। बार=पारी।

अर्थ—बगीचे में अर्धविकसित फूल की कलियां और पूर्ण विकसित फूलों से लगे पौधे हैं। माली पूरे गुन्जारित फूलों को तोड़ कर ले जाता है और कलियों को छोड़ जाता है। यह क्रम देख कर कलियां दुखित होकर सोचती हैं कि हम भी कल जब विकसित होकर फूल का रूप धारण कर लेंगी तो हमें भी माली इसी तरह तोड़ कर ले जाएगा।

भावार्थ—संसार में मृत्यु का चक्र निरन्तर चल ही रहा है। जिस जिस मनुष्य का उपयुक्त समय स्वर्ग का आ जाता हो तभी वह मृत्यु का शिकार होकर इस संसार के बगीचे से उठा लिया जाता है। यह क्रम देखकर अन्य मनुष्य भी चिन्तित रहते हैं कि एक दिन हमारा समय आने पर हम भी काल के ग्रास होंगे।

(३) "बाढ़ी आवत ⋯⋯⋯घर भाग ॥"

शब्दार्थ—बाढ़ी=बाढ़ई। तरुवर=वृक्ष समूह। डोलनलागा=हिलने लगे। पखेरू=पक्षी।

अर्थ—बाढ़ई को (हाथ में हथियार लिये) आते निहार कर वृक्ष गण हल चल मचाने लगते हैं और दुखित होकर कहते हैं कि हमें अपने कटने की उतनी चिन्ता नहीं है कि जितनी चिन्ता और दुख इस बात का है कि पक्षी गण जो हम पर निवास करते थे भाग जावेंगे।

भावार्थ—परोपकारी मनुष्यों को दूसरों के लिये अपना शरीर तक दे देने में कोई दुख नहीं होता। उन्हें अपने आश्रितों को कष्ट पीड़ित देख कर दुख होता है। वे स्वयं दुख में रह कर भी अपने आश्रितों को सुखी देखना चाहते हैं।

फागुन आवत⋯⋯पीले मांहि।

शब्दार्थ—फागुन=फाल्गुन,माह। बन=वन, जंगल। रूना=उदास। डालो=वृक्ष की शाखा। पात=पत्ता, गिरना। थांहि=थांह, होना।

अर्थ—गरमी की तपती हुई ऋतु में जंगल के ऊचे ऊचे वृक्षों को बड़ा कष्ट होता है। वे धूप के कारण सूख जाते है. उनकी शाखायें सूखकर गिर जाती हैं तथा पतझड़ शुरु हो जाता है अतः फागुन का यह सुखदायी महीना समीप आते देखकर जंगल अपने मनमें बड़ा उदास होता है।

भावार्थ—जिस प्रकार वृक्षों के संरक्षक-वन के वृक्षों को बुरी हालत में देख कर दुखी होता है उसी प्रकार उदार पुरुष को अपने संरक्षितो को दुखित देख कर बड़ा सन्ताप होता है।

(५) तेरा सांई ······· सूघै घास।

शब्दार्थ—सांई=स्वामी, ईश्वर। पुहुपन=पुष्प, फूल। बास=सुगन्ध। मिरग=मृग, हिरन। फिरे फिर=बार बार।

भावार्थ—कबीर साधकों को यहां वहां ईश्वर की खोज में भटकते हुये देखकर उन्हें संबोधित करके भ्रम निवारण करते हैं कि तेरा ईश्वर तो तेरे अन्दर ही उसी प्रकार से (निगुण रूप) से) विद्यमान है जिस प्रकार फूल में सुगन्ध रहती है पर वह दिखाई नहीं देती। कस्तूरी का मृग रहता है उसको उसकी सुगन्ध आती है। वह भ्रमित होकर यहां वहां ढूंढ़ता है और समझता है कि सुगन्ध घास में से ही आती है। उसे यह ज्ञान नहीं होता कि कस्तूरी तो उसके ही अन्दर है और उसके ही सिर से वह सुगन्ध आती है। इसी तरह मनुष्य अज्ञान के कारण यह नहीं समझता कि ईश्वर तो उसके ही अन्दर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं वह भ्रमित होकर जंगल आदि स्थानों में ईश्वर की खोज में निकलता है।

(६) कमोदनी ········ताही के पास।

शब्दार्थ—कमोदनी=एक प्रकार का फूल (जो जल में ही रहता है)। अकास=आकाश। जाही जिसको। भावता= प्रेम करता। ताही उसीके।

अर्थ—कबीरदास जी प्रेम की समीपता का वर्णन करते हुये कहते हैं कि कमोदिनी तो पानी में निवास करती है और चन्द्रमा उससे बहुत दूर आकाश में रहता है। पर कमोदनी चन्द्रमा से अत्यन्त (अनन्य) प्रेम करती है अतएव वे हृदय से समीप हैं और प्रेम के ही कारण चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो मनुष्य जिससे अनन्य प्रेम करता है वह उसको प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—मनुष्य और ईश्वर की दूरी तभी तक रहती है जब तक मनुष्य ईश्वर से अनन्य प्रेम नहीं करता पर अनन्य प्रेम (याने भक्ति) करने से ईश्वर भी जीव को प्राप्त हो जाता है।

जिभ्या में··· ········इक बोल।

शब्दार्थ—जिभ्या=जीभ, जबान। अमृत=अमरत्व। बोल=वाणी। बिस=विष, जहर। बासुकि=सर्प। ऊतरै= उतर जाता है।

अर्थ और भावार्थ—कबीर मधुर वाणी की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं कि मनुष्य की जीभ में अमरत्व की शक्ति भरी है। यदि उसका मनुष्य सदुपयोग करे। मनुष्य दुष्ट तक को मधुर वाणी से जीत सकता है। एक मीठी तान से सर्प सरीखे विषहला जीव तक वस में हो जाता है और अपना विष छोड़ देता है। अतः मनुष्य को हमेशा मीठी वाणी बोलना चाहिए।

रोड़ा है················मिले भगवान।

शब्दार्थ—रोड़ा=पत्थर। बाट=रास्ता। पखंड=पाखंड, ढोंग। अभिमाना=शान, घमंड अहंकार। जन=मनुष्य। ताहि=उसे ही।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि जिस तरह रास्तागीरों की लातें आदि सहन कर रास्ते का पत्थर निश्चेष्ट भाव से अपने स्थान पर डटा रहता है उसी प्रकार ईश्वर के साधक को ढोंग, मानापमान के भाव को छोड़ कर, संसार की आलोचना की परवाह न करते हुए अडिग रहना चाहिए। ऐसे ही अत वाले मनुष्य को ईश्वर का साक्षातकार होता है

भावार्थ—अहंकार को त्यागकर विनय और निश्चय के साथ मनुष्य को अपने उद्देश्य मे लग जाना चाहिए तभी उसको अपने ध्येय में सफलता प्राप्त होती है।

(९) रोड़ा भया ················ की खेह।

शब्दार्थ – भया=हुआ। पथी=राहगीर, पथिक। हरि-जन=ईश्वर का साधक। जिसी=जैसे। जिमीं=जमीन। खेह=रेत, मिट्टी।

अर्थ—यदि (ईश्वर का साधक) मनुष्य रास्ते का रोड़ा बनकर रहा तो भी वह अधूरा ही है क्योंकि रोड़ा तो राह चलने वालों को कष्ट पहुँचाता है। साधक को तो किसी को कष्ट नहीं देना चाहिए। अतः उसे जमीन की धूल की तरह कोमल और सहनशील होना चाहिए।

भावार्थ—मनुष्य का व्यवहार ऐसा होना चाहिए जिससे अन्य किसी को जरा सा भी कष्ट न पहुँचे। उसे कोमल तथा सहनशील होना चाहिए।

(१०) खेह ················ जैसा रंग।

शब्दार्थ—खेह=धूल। अंग=शरीर।

अर्थ—हरि के प्रेमी को धूल की तरह कोमल भी होने से कार्य नही चलेगा क्योंकि धूल भी तो अन्य मनुष्यों के शरीरों मे उड़ उड़ कर लगती है। पर उसे तो पानी के रंग की तरह निर्मल होना चाहिए।

भावार्थ—हरिजन का ऐसा स्वभाव होना चाहिए कि जिससे अन्य लोग दूषित न होकर उसके स्वभाव के प्रभाव से निर्मल और दोष रहित हों। उसे दूसरो को भी पवित्र और सद्गुणी बनाना चाहिए।

(११) पानी भया·······हरि ही होय।

शब्दार्थ—ताता=गरम। सीरा=ठन्डा। हरि=ईश्वर।

अर्थ—यदि ईश्वर की साधक पानी की तरह निर्मल भी हो जावे तो भी वह अपूर्ण ही है क्योकि पानी तो ऋतुओ के अनुसार कभी गरम हो जाता है तो कभी ठन्डा। अतएव उसे परमात्मा के समान ही निर्गुण और निर्विकार होना चाहिये। वह सदा ईश्वर की ही तरह एक रस याने सदा एक ही स्थित का (स्थित प्रज्ञ) रहे।

भावार्थ—मनुष्य निर्मल और पवित्र रहे पर यह भी आवश्यक है कि वह सदैव एक रस ही रहे और बाहरी परिस्थितिओ के अनुसार प्रभावित न हो।

(१२) साधू ऐसा·· ····देइ उड़ाइ।

शब्दार्थ—सूप=सूपा। सुभई=स्वभाव। थोथा=अनुपयोगी वस्तु, व्यर्थ।

अर्थ—सज्जन पुरुप को इस तरह अच्छे और बुरे का ज्ञान होना चाहिये जिस प्रकार सूपा है जो केवल उपयोगी काम की चीज तो बचा लेता है पर व्यर्थ कूड़ा कचरा दूर फटक देता है। इसी प्रकार साधु सद गुणो को तो ग्रहण करे पर अवगुणो को दूर करता जावे।

भावार्थ—मनुष्य में गुण और दुर्गुण दोनों रहते हैं पर उसे विवेक बुद्धि से सदगुणों को धारण करना चाहिये वा दुर्गुणों को दूर करना चाहिये।

(१३) सिंह के·······न चलैं जमात।

शब्दार्थ—सिंहन=सिंह, शेर। लहंड़े=समूह, झुण्ड। पांत=भीड़। ललन=लाल, रत्न मणि। जमात=समाज, समुदाय।

अर्थ—सिंहों के (जंगल में) झुण्ड नहीं पाये जाते क्योंकि वे अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ हैं। उसी तरह हंसों (रूपी विवेक शील सज्जनों) की कोई लम्बी पंक्ति नहीं रहती और रत्न लाल आदि बहुमूल्य मणि ढेरों के ढेर नहीं पाये जाते। अर्थात् ये सब गुणी पदार्थ अल्प मात्रा में ही पाये जाते हैं। इसी तरह साधु लोगों का कोई समुदाय या सम्प्रदाय नहीं रहता।

भावार्थ—बलशाली एवं गुणी मनुष्यो को अपने ही बल का सहारा रहता है। तथा साधु गण सारे संसार को ही अपना भाव कर प्रेम करते हैं वे एक संकुचित संप्रदाय में नहीं रहते। साधारण अर्थ में यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य को स्वावलम्बी और विशाल हृदय का होना चाहिये। उसे संकुचित दायरे में अपने आपको बांध नहीं रखना चाहिये।

लघुता तें··················सिर धूरि।

शब्दार्थ—लघुता=छोटापन, नम्रता। प्रभुता=महानता, बड़प्पन। प्रभु=ईश्वर।

अर्थ भावार्थ—कबीरदासजी नम्रता का उपदेश करते हुए कहते हैं कि चींटी एक बहुत छोटा जीव है और इस छोटे पन के कारण वह शक्कर आदि पदार्थ के समीप रह पाती है इसलिए

उसे मीठी चीज (शक्कर) ही प्राप्त होती है पर दूसरी ओर हाथी एक बड़ा विशालकाय जानवर है, सभी लोग सशंकित रहते हैं उसे अच्छे पदार्थ पाने का अवसर ही नहीं मिलता। अतएव वह धूल ही फूंकता रहता है और उसके मस्तक पर धूल ही रहती है। इससे यह सिद्ध होता है कि छोटेपन से ही बड़प्पन मिलता है। जहां बड़े होने का अहंकार होता है वह हानि में रहता है और उस अहंकारी से ईश्वर भी दूर हो जाते हैं। महान् बनने के लिए नम्र बनकर अहंकार को त्याग देना चाहिए।

(१५) आछे दिन ··············· गई खेत।

शब्दार्थ—आछे = अच्छे। पाछे = बीत गये। हेत = प्रेम। चुगना = खाना।

अर्थ, भावार्थ—कबीर ईश्वर भक्ति का प्रचार करते हुए कहते हैं कि अच्छा दिन याने सुखी जीवन बीत गया तब ईश्वर चिन्तन का समय था; उस समय तो ईश्वर से प्रेम नहीं किया। अब जब कि मृत्यु समीप है और शरीर जर्जर है तब ईश्वर को प्राप्त करने का ढोंग करते हैं। बीते दिनों की मूर्खता के लिए अब पछताने से कोई लाभ नहीं हो सकता। जिस प्रकार चिड़ियां खेत की सारी फसल नष्ट कर देती हैं और मनुष्य उस समय उसकी देख भाल नहीं कर पाता। उसे बाद में अपनी असावधानी के लिए पछताना पड़ता है। पर इससे तो कुछ फायदा हो नहीं सकता।

साधारण अर्थ यह है कि मनुष्य को समय रहते ही चेतना चाहिए और समय का मूल्य करते हुए उसका सदुपयोग करना चाहिए।

(१६) मूंड़ मुंड़ाये ·············· लेयं मुंड़ाई।

शब्दार्थ—मूंड=सिर । मुंडाये=बाल घुटवा लेना, बाल कटाना । बैकुण्ठ=स्वर्ग ।

अर्थ, भावार्थ—सिर मुंडन की रूढ़ि की आलोचना करते हुए कबीर कहते हैं कि सिर मुंडन करा लेना ही भगवान मिलने के लिए पर्याप्त होता तो सभी को सिर मुंडा लेना चाहिए। (ताकि प्रेम, तपस्या आदि साधन करने की जरूरत ही न पड़े।) पर वे एक खास उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यदि ऐसा होता तो भेड़ अवश्य स्वर्ग चली जाती जबकि उसके बड़े बड़े बाल कई बक्त मूंडे जाते हैं।

साधारण तात्पर्य यह कि सिर मुंडवाना आदि बाह्य धर्म के आडम्बरों से कुछ नहीं होता। ये सब धर्म के आडम्बर और पाखंड मात्र हैं। अतः मनुष्य को बाह्य ढोंग आदि छोड़कर हृदय से ही ईश्वर प्रेम करना चाहिये।

(१७) हंसा बगुला ·········मोती खांहि ॥

शब्दार्थ—मान सरोवर=मानस झील । बंग=बगुला । माछुरी=मछली ।

अर्थ—मानसरोवर झील में हंस और ब ुला दोनो रहते हैं और देखने में दोनों पक्षी एक ही समान रहते हैं, उनमे कोई भिन्नता नहीं मालूम होती किन्तु बगुला वहां मछली की तलाश में रहता है और हंस मोती ही ढूंढकर खाता है। इसी आचरण से उनकी पहचान होती है।

भावार्थ संसार में सभी मनुष्य एक समान हैं और उनमें कोई अच्छे- बुरे का भेद नहीं दिखाई देता। पर जो मनुष्य बुरा आचरण करेगा वह बगुला की तरह नीच है और जो अच्छा सदगुणी चरित्र वाला होगा वह हंस की तरह उच्च है।

साधारण अर्थ में कह सकते हैं कि मनुष्य अपने आचरण द्वारा ही पहिचाना जाता है।

जो हंसा मोती चुगै .... मिलै तो खाई ॥

शब्दार्थ—कांकर=कंकड़, पत्थर । पतियाई=ग्रहण करना । नवै=झुकै ।

अर्थ—जो हंस पक्षी मोती ही खाने का व्रती है वह कभी कंकड़, पत्थर को ग्रहण नहीं कर सकता। वह भूखे रहने पर भी कंकर को खाने के लिए अपना सिर नहीं झुकाता। उसे जब मोती मिलते हैं तभी वह खाता है।

भावार्थ—सद्वृत्ति और सद्गुणों से विभूषित मनुष्य सदैव अपने व्रत पर अटल रहता है। विपत्ति के समय भी वह अपना व्रत भंग नहीं करता। वह हमेशा उच्च आचरण ही करेगा। कैसी भी परिस्थिति आवे वह कभी दुर्गुण और बुरी वृत्तियां ग्रहण नहीं करता।

मनुष्य को परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने ध्येय मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिए। उसे परिस्थितियों को अपना अनुकूल करना चाहिए।

देह धरे को .... भुगतै रोई ॥

शब्दार्थ—देह=शरीर। धरे=धारण करना। दंड=दुख, सजा। काहू=कोई। भुगतै=सहना, भुगतना। रोइ=रोकर।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि देह धारण करने के परिणाम स्वरूप सभी मनुष्यों को कष्ट झेलना पड़ता है। पर आत्म ज्ञानी मनुष्य अपने ज्ञान के कारण वह प्रसन्नता से दुख भोगता है। पर मूर्ख मनुष्य उसी दुख को रो रोकर सहन करता है।

भावार्थ—सभी शरीर धारियों को दुख होता है। पर जिनके शरीर में मोह बुद्धि नहीं रहती उन्हे ये शारीरिक दुख असर नहीं करते और वे उन्हें सुख पूर्वक सहन कर लेते हैं। पर संसार और शरीर सुख में फसे मोह बुद्धि के लोग उस दुख को अपना ही दुख समझकर रो रो कर सहन करते हैं।

अतः दुखों को प्रसन्नता पूर्वक प्रारब्ध का फल समझ कर सहन करना चाहिये। क्योंकि रोने धोने से तो दुख दूर होते नहीं।

(२०) ऐसी बानी ······ सीतल होइ॥

शब्दार्थ—बानी=वाणी। आपा=अहंकार, शान। सीतल=शीतल, आनन्दित।

अर्थ मन का अहंकार छोड़ कर, विनम्र भाव से अन्य लोगों से मीठे वचन बोलना चाहिए। मीठी वाणी दूसरो को भी शीतल, आनन्दित करती है और स्वयं को भी आनन्द मिलता है।

भावार्थ—मानव प्रेम के लिये आपस का व्यवहार अच्छा होना चाहिये। और एक दूसरे से विनम्रता पूर्वक मीठी वाणी का उपयोग करना चाहिये।

(२१) खूंदन ······ न जाइ॥

शब्दार्थ—खूंदना=रौंदना। धरती=जमीन। बनराइ=जंगल। संत=साधु। दुरजन=दुष्ट मनुष्य। औरन=दूसरे।

अर्थ—महात्मा कबीर संत महिमा बतलाते हुये कहते हैं कि जमीन (जो दूसरों को पालती है) अन्य लोगो की लातें और रौंदना सहन करती है। तथा जंगल (जो मनुष्यों को फल आदि देता है) को काटा जाता है। इतने पर भी वे अपना उपकारी स्वभाव

नहीं छोड़ते। इसी तरह संत पुरुष दुष्ट लोगों के बुरे वचन सहन करते हैं फिर भी वे अपना सन्त स्वभाव नहीं त्यागते। संतों के अतिरिक्त अन्य लोग इस प्रकार बुरे वचन सहन नहीं कर सकते।

भावार्थ—संतो का स्व भाव उदार और क्षमाशील रहता है, वे दुष्टो के बुरे वचन सुनकर क्रोधित नहीं होते। ज्ञानी पुरुष ही ऐसा दुर्व्यवहार और अपमान सहन कर उपकार करना नहीं छोड़ते अन्य लोगों में ऐसी उदारता की भावना नहीं रहती।

(२२) करगस ······ सकेगी जार।

शब्दार्थ—करगस=कौआ। टारि=टालना। जारि=जला।

अर्थ—दुष्टों के कौए के समान बुरे वचन सुनकर संत पुरुष उन्हे टालते रहते हैं। संतों पर इन बुरे वचनों का उसी प्रकार कोई असर नहीं पड़ता जिस प्रकार समुद्र में मानो अग्निमय विजली गिर जाय तो समुद्र का कुछ बिगाड़ नहीं सकती। स्वयं ही समुद्र के पानी में ठन्डी हो जायगी।

भावार्थ—संत पुरुषों पर दुष्ट मनुष्यो के बुरे व्यवहार का कुछ भी प्रभाव नही पड़ता। वे इतने क्षमाशील और महान होते है कि उन बुरे वचनों को क्षमा कर देते हैं तनिक भी क्रोधित नही होते। उन बुरे वज्र सदृश वचन संतों पर कोई प्रभाव नहीं डालते। उनमे जाकर स्वयं ठन्डे हो जाते हैं।

(२३) कबिरा ······ ऊंचा होई॥

शब्दार्थ—गुरु=स्वामी (यहां ईश्वर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है) साहेब=ईश्वर। कर=हाथ। ऊंचा=उदार (यहां इसी अर्थ मे)।

अर्थ—सन्त कबीर कहते हैं कि भगवान को प्राप्त करने के इसे दो ही मार्ग या दो ही साधन मालूम हैं। एक मार्ग तो यह है कि ईश्वर की (नाम से) भक्ति की जावे और दूसरा रास्ता यह है कि उदार भावना से हर तरह का दान दे।

भावार्थ—ईश्वर प्राप्ति के लिये नाम कीर्तन, भजन या दान उपकार करना चाहिये।

(२४) रितु ········ नहीं जात,

शब्दार्थ—रितु=ऋतु, मौसम। जाचक=याचक, भिक्षुक द्रुम=आम। पात=पत्ता, गिराना। पल्लव=पत्ता।

अर्थ—(कबीर यह रूपक देते हुये दान की महिमा का उपदेश देते हैं) बसंत ऋतु आती है और कुछ दान मांगती है इससे आम के वृक्ष ने प्रसन्न होकर अपने पत्ते दान में दे दिये। पर इससे आम का कुछ गया नहीं उसे इसके बदले में तत्काल ही नये पत्ते प्राप्त हो जाते हैं। इस से यह सिद्ध होता है कि दान देने से कुछ घटता नहीं।

भावार्थ—मनुष्यों को दान देना चाहिये इससे उनका कुछ घटता नहीं है वरन उन्हें उससे भी ज्यादा प्राप्त हो जाता है।

(२५) जो जल ······· को काम।

शब्दार्थ—दान=धन। उलीचिये=निकालिए।

अर्थ—जिस प्रकार नाव में पानी भर जाने पर दोनों हाथों से, जी जान से उसमें से लोग पानी उलीचते हैं उसी तरह सज्जन का कर्तव्य है कि घर में धन रुपया आवश्यकता से अधिक बढ़ जाने से उसे उदार भावना से दान करना चाहिये। (क्योंकि जिस प्रकार नाव में जल बढ़ जाने से नाव को पानी में डूबने का डर रहता है उसी प्रकार घर में धन बढ़ जाने से पतन का खतरा रहता है)।

भावार्थ—सन्त पुरुष आवश्यकता से अधिक धन सांचय करके नहीं रखते वे उसे उदार भावना से परोपकार में लगा देते है।

(२६) साइं इतना ······· भूखा जाई ॥

शब्दार्थ—सांई=स्वामी, भगवान। कुटुम=कुटुम्ब।

अर्थ—कबीर ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे स्वामी, मुझे केवल इतना धन दीजिए कि भरण पोषण हो सके और जिससे मैं भी भोजन पा सकूं तथा आगत अतिथि सज्जन भी घर से विना भोजन प्राप्त किये वापिस न हों।

भावार्थ—केवल आवश्यकता भर के लिये ही धन की कामना करना चाहिए जिससे भरण पोषण हो सके तथा अतिथि सत्कार भी किया जा सके।

(२७)साधू गांठ ······· तब देई ॥

शब्दार्थ—गांठ=सग्रह। उदर=पेट। हरि=ईश्वर।

अर्थ—सन्त पुरुष जरूरत से अधिक संग्रह करके नहीं रखता। वह केवल उतना ही लेता है जिससे उसका पेट भर सके। आगे के लिये वह बचाता नही क्योंकि उसे विश्वास है कि आगे तथा पीछे हमेशा ही भगवान विराज मान हैं जब उनसे मांगते हैं तभी वह दे देता है।

भावार्थ—उतना ही धन वगैरा ग्रहण करना चाहिये जितना आपके लिये पर्याप्त हो। आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की क्या आवश्यकता है जब ईश्वर इच्छानुसार ही सबको देते हैं। इस व्रत को अपरिग्रह कहते हैं।

(२८) गोधन ······· धूरि समान ॥

शब्दार्थ—गोधन=गायों को सम्पत्ति। गज=हाथी। बाजि=घोड़ा।

अर्थ—कबीर कहते हैं जब मनुष्य को संतोष की वृत्ति आ जाती है तब संतोष के समाने गौ, हाथी, घोड़ा, हीरा मोती तथा धन के ढेरों आदि की भौतिक सम्पत्ति धूल के समान हेय हो जाती है।

भावार्थ—मनुष्य को सन्तुष्ट रहना चाहिये। सन्तोष ही सुख है।

(२९) धीरे २·······फल जोइ।

शब्दार्थ—मना=मन। जोइ=होता है।

अर्थ—कबीर अपने मन को संबोधित्त कर कहते हैं कि हे मन, धीरज धारण कर क्योंकि धैर्य से ही सब कार्य होता है जल्दी करने से कुछ नहीं होता जिस प्रकार माली यदि पौधे पर सौ घड़ा जल भी रोज सींचे तो कुछ न होगा पर जब उसकी ऋतु या समय आयगा तभी फल बिना प्रयास के ही प्राप्त हो जायगा।

अतः मनुष्य को धैर्य पूर्वक अपने कार्य में लगे रहना चाहिये समय आने पर फल अपने आप प्राप्त होगा।

(३०) साचे·······बिकाई।

शब्दार्थ—

अर्थ—कबीर आज कल के समय की आलोचना करते हुए कहते हैं कि सच्चे आदमी की कोई कीमत या मान नहीं करता पर झूठे और बेईमान आदमी को संसार मान देता है। जिस प्रकार (गोरस याने) दूध तो रास्ते रास्ते फिर कर बेचा जाता है पर शराब सरीखी बुरी चीज दूकान में ही बेची जाती है याने लोग शराब पीने को दूकान पर ही लालायित होकर जाते हैं।

भावार्थ—आजकल के स्वार्थी संसार में लोग सत्य और धर्म की बात कोई नहीं मानता। सभी असत्य और अधर्म में प्रवृत्त हैं।

(३१) कबिरा गरब.......भया पलास।

शब्दार्थ—

अर्थ—कबीर कहते हैं कि इस जवानी के मद में मस्त होकर अभिमान नही करना चाहिये क्योंकि यह जवानी अस्थिर है जिस प्रकार पलास वृक्ष में टेसू फूल केवल दस दिन ही फूलता है और फिर वह रूखा ही जाता है।

भावार्थ—जवानी कुछ समय की ही है अतः उसकी मस्ती में आकर मदहोस नहीं होना चाहिये।

(३२) चातक.........चित दई।

शब्दार्थ—चातक=पपीहा। सुतहि=पुत्र को। आन=अन्य। नीर=पानी।

अर्थ—पपीहा अपने पुत्र को यही शिक्षा देता है कि अपने कुल की यह परम्परा है कि हम स्वाति नक्षत्र के बरसे हुए पानी को ही पीते हैं और दूसरा पानी ग्रहण नही करते। अतः कुल की रीति न छोड़ कर स्वाति के बूंदों का ही ध्यान कर।

भावार्थ—मनुष्य को अपने कुल एवं धर्म की मर्यादा रखते हुए अपनी परम्परा और अपना ध्येय नहीं छोड़ना चाहिए। चाहे उसके बिना कितनी ही मुसीबत क्यों न उठानी पड़े।

(३३) ऊंची.................सहे सररि।

शब्दार्थ—सुरपति=बादलों के देव इन्द्र। जांचई=रास्ता देखना।

अर्थ—पपीहा उच्च जाति का है अतः वह नीच जाति का पानी मरते दम तक नहीं पी सकता। प्यास के कारण या

तो वह देवताओं के पति इन्द्र की ही रास्ता देखता है या वही पानी पीता है जो इन्द्र के द्वारा स्वाति नक्षत्र में बरसाया जाता है। या वह अपने शरीर को बिना पानी के दुख देता है।

भावार्थ—एक ध्येय व्रती सन्त कभी अपनी प्रतिज्ञा और व्रत से च्युत नहीं होता। या तो वह ईश्वर से ही याचना करता है या अपने शरीर को ही कष्ट देकर त्याग करता है।

(३४) कर ········ मरे पियास ॥

शब्दार्थ—बहियां=बांह, हाथ। बिरानी=दूसरे की। पियास=प्यासा।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि अपनी बाहों के बल का ही विश्वास करो। दूसरों की आशा छोड़ दो। जिसके घर के सामने जल से पूर्ण नदी बह रही है सो प्यासा कैसा मर सकता है।

तात्पर्य यह कि मनुष्य को स्वावलम्बी बनना चाहिये। स्वयं के बल पर विश्वास होने से दूसरों की आशा नहीं रखना पड़ती।

(३५) साधु ········ चकना चूर ॥

शब्दार्थ—चाखै=पावे। चकनाचूर=नेस्तनाबूद।

अर्थ—केवल साधु कहाना बहुत कठिन है। यह मार्ग ऐसा खतरनाक है जैसा खजूर का पेड़। जो इस ऊंचे पेड़ पर चढ़ता है तो उसे मधुर रस मिलता है और गिर जाने से बिलकुल नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार साधु बनने में प्रेम रस प्राप्त होता है पर यदि पतित हुये तो ऐसे गिर जाते हैं कि फिर कोई उठने की आशा नहीं रहती।

भावार्थ—साधु बनना अत्यन्त कठिन कार्य है। उसमें पहुंचने पर मधुर प्रेम का आनन्द मिलता है पर पतित होने से सर्वनाश हो जाता है।

शब्दार्थ—छीर=क्षीर, दूध। नीर=जल। बक=बगुला।

अर्थ—कबीर कहते हैं कि हंस और बगुला दोनों का रंग एक सा ही रहता है और दोनों एक ही तालाब में निवास करते हैं। पर जब क्षीर नीर की परीक्षा होती तो हंस तो क्षीर नीर विवेक होने के कारण पहिचान लिया जाता है और बगुला भी इसीसे जान लिया जाता है।

भावार्थ—सभी मनुष्य बाह्यतः एक समान रहते हैं और सभी एक ही संसार में रहते हैं। पर विवेकशाली और मूर्ख की पहिचान उनके पृथक पृथक आचरण से ही होती है।

(३७) शब्दार्थ—अंक=भेंट। सरीरा=शरीर। भेंटिया =मिलना।

अर्थ—कबीर संत महिमा करते हुए कहते हैं कि वह दिन अत्यन्त महत्वशाली है जिस दिन कोई सन्त पुरुष भाग्य से मिल जाते है। बड़े प्रेम से उनसे मिलने पर (उनके प्रभाव से) शरीर से पाप नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—सत संगति से सात्विक विचार होते है और पाप नष्ट हो जाते हैं।

शब्दार्थ—खुलि=बिना संकोच। जगाती—पहरेदार।

अर्थ—संसार में बिना भेद के स्पष्ट होकर व्यवहार करो इससे कोई भी बद्ध नहीं कर सकता या कुछ रोकटोक नहीं कर सकता। नदी के घाट का पहरेदार बोझ वालों से कर वसूल करता है। यदि किसी के सिर पर कोई बोझ न होगा तो वह क्या बिगाड़ लेगा।

संसार मे सत्य और स्पष्टता से मार्ग स्वतन्त्र हो जाता है। इसे कोई भी नही रोक सकता।

सूर—पदावली

पृष्ठ ६७। पद १, शब्दार्थ—अविगत=शरणागत। गति=दशा। गूंगे=जो बोल न सके, मूक। अन्तरगत=मन ही मन। भावै=अच्छा लगे। निरन्तर=सदैव। अमित=अपार। तोष=संतोष। बानी=वाणी, वचन। अगम=जिसकी थाह न हो। अगोचर=अदृश्य। जुगुति=युक्ति। निरालम्ब=निराधार। चकृत=चारों ओर। सगुन=सगुण।

संदर्भ—निर्गुण ईश्वर की आराधना कठिन होने के कारण सूरदासजी सगुणोपासना की पुष्टि करते हुये भगवान श्रीकृष्ण का वर्णन करते हैं।

सरलार्थ—तेरी शरण में आये हुए की दशा का वर्णन करते नहीं बनता। वह भक्त अवश्य ही तेरे अस्तित्व के अनुभव से सुखी होता है; किन्तु बेचारा कह नहीं सकता। उसकी दशा वही है जो एक मूक की। वह मीठा फल खाता है और उसके स्वाद का अनुभव करता है; किंतु प्रकट नहीं कर सकता। मन ही मन आनन्दित होता है। उस परम स्वाद से अपार सन्तोष प्राप्त करता है। ईश्वर की गति इतनी गम्भीर है कि दिखाई भी नहीं देती। जो उसे प्राप्त कर लेता है वही सत आनन्द को जानता है। यदि हम ऐसी ईश्वरीय शक्ति का ध्यान करें जो रूप रेखा, गुण और युक्ति से विहीन हो तो यह मन उसे प्राप्त करने के लिए चारों ओर भटकता रहेगा और फिरभी सफलतापूर्वक उसे सब भांति अथाह सोचकर निराश हो जावेगा इसीलिए सूरदास जी भगवान के सम्बन्ध में सगुण लीलामय पद द्वारा कीर्ति गान करते हैं।

भावार्थ—निर्गुण ईश्वर की उपासना में चित्त की एकाग्रता प्राप्त करना महा कठिन है और सगुण ईश्वर की

उपासना में निश्चित रूप और लक्ष्य होने से एकाग्रता प्राप्त करना सरल है। अतः सगुण उपासना ईश्वर प्राप्ति का सुलभ सोपान है।

पद २ शब्दार्थ—अनत=दूसरे स्थान पर। पच्छी=पक्षी। फिरि=लौटकर। महातम=महात्म। ध्यावै=उपासना करे। गंग=गंगाजी। छांड़ि=छोड़कर। दुर्मति—बुबुद्धि। कूप=कुआ। खनावै=खुदावे। मधुकर=भौंरा। अम्बुलरस=कमल पुष्प का रस। करील=बबूल। छेरी=बकरी।

वह भक्त जो ईश्वरानंद का परमसुख अनुभव कर चुका हो उसे और कुछ अच्छा नही लगता। इसी कथन की पुष्टि करते हुए सूरदासजी कहते हैं कि:—

सरलार्थ—ऐसा अन्य कौनसा स्थान है जहां मुझे सुख शांति मिल सके अर्थात् कोई नहीं। मेरी दशा उसी प्रकार है जिस भांति जहाज पर बैठा पक्षी यदि उड़ जावें तो वह लौटकर वही आवेगा। (क्योंकि उसे चारों ओर सर्वत्र जल ही दिखाई देगा। वहां कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां उसे आश्रय मिल सके। वह अपने को निराधार समझ पुनः जहाज का ही सहारा लेता है। यदि पानी में आश्रय लेता है तो डूबकर प्राण गंवावेगा।) ऐसा कौन होगा जो कमल नेत्र प्रभु को त्याग और दूसरे देव की आराधना करेगा ? यदि करे भी तो वह सब निराधार ही होगी। गंगाजी को छोड़ कोई मूर्ख ही होगा जो अपनी पिपासा शांत करने के हेतु कुआ खुदवाने को तत्पर होगा। जिस भौंरे ने कमल पुष्प के मधुर पराग का पान कर लिया है वह कदापि बबूल के फल खाने की धृष्टता न करेगा। तथा काम धेनु के मधुर दुग्ध को तिरस्कार कर कौन बकरी का दूध लगवायेगा ? कोई नहीं।

भावार्थ—जिसे सतचित आनन्द सुख के सच्चे रूप का

अनुभव हो चुका है उसे समस्त सांसारिक बातें व्यर्थ प्रतीत होती हैं। उसका मूल आधार वही ईश्वर है।

पद ३। शब्दार्थ—मैया=माता। कबहि=कब। चोटी=शिखा। किति=कितना। बार=समय। अजहूँ=आज तक। वेनी=चोटी। ज्यो=के समान। भ्वै=भूमि पर। काचो=कच्चा, जो गर्म न किया गया हो। पचि पचि=बार बार। चिर जीवो=चिर काल तक जीवित रहो। दोऊ=दोनों। हरि=कृष्ण। बलधर=बलराम। जोरी=जोड़ी।

सदर्भ—श्री कृष्णजी माता यशोदा से अपनी चोटी के विषय में बात करते हुये माखन रोटी प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट करते हैं-क्या ही सुन्दर उपालम्भ है।

सरलार्थ—हे माता! मेरी चोटी कब तक बड़ी होगी? मुझे दूध पीते हुये कितने दिवस बीत गये किन्तु आज भी वह वैसी ही छोटी है। तू तो कहती थी कि जिस प्रकार भाई बलराम की वेणी है उसी प्रकार लम्बी और मोटी हो जावेगी जो बार कंघी करने, गुहने, नहाने और ऊछने से नागिन के समान भूमि पर लोटेगी। मुझे तू बारबार कच्चा दूध (बिना गर्म किया) ही पिलाती है और माखन रोटी नहीं देती। सूरदासजी अपनी इच्छा प्रकट करते हैं कि कृष्ण और बलराम दोनो भाइयो की जोड़ी चिरजीवी हो।

कृष्ण जिस प्रकार माता से उपालंभ पूर्ण वाक् चातुर्य से माखन रोटी खाने की इच्छा प्रकट करते हैं।

पद ४। शब्दार्थ—आजु=आज। जैहों=जाऊँगा। कर=हाथ। खैहों=खाऊँगा। जनि=नही। बारे=बालक। भांति=अवस्था। तनक तनक=छोटे छोटे। ह्वै हैं=हो जावेगी। राति=रात्रि। लै=लेकर। चारन=चराने के लिये। सांझ=

संध्या समय। वदन=मुख। कुम्हिलैहैं=कुम्हला जावेगा। घामहिं=धूप। मांझ=में। सौं=सौगन्ध, शपथ। नेक=बिल्कुल। टेक=हठ।

संदर्भ—बालक की हठ कितनी दृढ़ होती है कि वह उसे पूरी करने के लिये किस प्रकार वाद विवाद करता है, इसका परिचय देते हुये सूरदास जी लिखते हैं:—

पदार्थ—श्री कृष्ण माता यशोदा से कहते हैं कि हे माता आज तो मैं गौयें चराने जाऊँगा। वृन्दावन के नाना प्रकार के फल मैं अपने हाथों से ही खाऊँगा। इस पर माता को चिंता होती है और वे कृष्ण को समझाते हुये कहती हैं कि ऐसी बात न करो, भला अपनी बाल अवस्था पर भी तो विचार करो कि तुम अभी छोटे हो तुम छोटे छोटे पैरों से कैसे इतनी दूर चलोगे घर आते आते रात्रि हो जावेगी, (अंधकार का भय)। गैयां लेकर उन्हें चराने के लिये प्रातःकाल जाते हैं तथा संध्या समय लौटकर घर आते है। धूप मे घूमने से तुम्हारा कमल सा मुख मलीन पड़ जावेगा। जब कृष्ण ने देखा कि माता का मोह इतना अधिक है कि वे मुझे आपत्ति मे नही देखना चाहती और फलतः मुझे जाने नही मिलेगा तब कृष्ण अपनी हठ की पुष्टि करते हैं कि हे माता मै तेरी शपथ खाकर कहता हूँ (जिससे माता मान जावे) कि मुझे धूप नहीं लगती (अब तो जाने मिल ही जावेगा) सूरदासजी कहते हैं कि श्याम माता का कहना नही मानते और अपनी ही हठ पर आरूढ़ हैं। बाल हठ का क्या ही सुन्दर चित्रण हैं।

पद ५. शब्दार्थ—मैया=माता। चरैहो=चराऊंगा। सिगरे=समस्त। घिरावत=एकत्र करवाते हैं। मोसो=मुझसे। पायं=पैर। पिराई=पीड़ा देते हैं। पत्याहु=विश्वास करो।

पूछ=पूछो। सौंह=शपथ। दिवाइ=देकर। पठवति=भेजती हूँ। लरिका=लड़का। कूं=को। बहराई=बहलाकर। अति==बहुत। मारत=मारते हैं। रिंगाइ=चलाकर।

सदर्भ—बालक किस प्रकार कार्य से जी चुराते हैं तथा माता की ममता बालक पर कितनी अधिक होती है इसका चित्रण सूरदासजी के शब्दो में इस प्रकार है: -

पदार्थ—श्रीकृष्ण माता यशोदा से कहते हैं कि मैं गैयाँ नहीं चराऊंगा। समस्त ग्वाल स्वयं तो गायो को एकत्र नही करते, वरन् मुझसे करवाते हैं और इससे मेरे पैरों मे पीड़ा होती है। तुम मुझपर विश्वास करो, मैं सत्य कहता हूं। यदि विश्वास न हो तो बलदाऊ से अपनी शपथ रखाकर पूछलो। (यहां श्रीकृष्ण को शका है कि कहीं बलदाऊ भी उनके विरोध मे न बोलदें अतः शपथ रखने पर झूठ न बोल सकेंगे।) यह शब्द सुन माता के हृदय में वात्सल्य उमड़ आया और वे बोलीं कि मैं तो अपने लड़के को इसलिए भेजती हूँ कि मन बहला आवे। मेरा श्याम तो अत्यन्त छोटा है उसे सब मारते और चलाते हैं। यह पक्षपात नही है किंतु मातृ स्नेह का स्वाभाविक उद्‌गार है।

पद ६ शब्दार्थ—दाऊ=बलराम। खिजाओ=तंग किया। मोसो=मुझसे। जायो=उत्पन्न किया है। रिस=क्रोध। मारे=कारण। हौं=मै। पुनि पुनि=बारम्बार। तिहारो=तेरा। तात=पिता। कत=क्यो। सिखै देत=शिक्षा देते है। खीझै क्रोधित होती। रीझै=प्रसन्न होती है। चवाई=चुगली करने वाला। धूत=धूर्त। पूत=पुत्र।

सदर्भ—बलराम और सब ग्वाल कृष्ण को तग करते हैं। यह सब कृष्ण माता यशोदा से कहते हैं तथा माता उन्हे सान्त्वना देती है।

हे माता ! बड़े भाई बलराम ने मुझे बहुत तंग किया है। वह मुझसे कहते हैं कि तुझे तो मोल खरीदा है यशोदा ने मुझे कब जन्म दिया है ? क्या कहूँ इसी क्रोध के कारण मैं खेलने नहीं जाता। मुझ से बारंबार पूछते हैं कि कौन तो तुम्हारी माता है और कौन तुम्हारे पिता हैं। नंद और यशोदा तो तुम्हारे पिता और माता नहीं हैं। यदि ऐसा होता तो तुम श्याम वर्ण के क्यों होते जबकि नन्द और यशोदा दोनों गौर वर्ण है। यह सब बातें बलराम सिखा देते हैं तथा सब ग्वाल चुटकी बजा बजाकर हंसते हैं। इतना सब होने पर भी तू मुझको ही मारती है तथा दाऊ पर कभी भी क्रोधित नहीं होती (पक्षपात है)। इस प्रकार कृष्ण की मुख मुद्रा क्रोध पूर्ण देखकर यशोदा जी के मनमें प्रसन्नता और प्रेम के भाव उमड़ आये। वे बोली हे कृष्ण ! सुनो बलराम तो जन्म से ही चुगली करने वाला और धूर्त स्वभाव का है। (तुम उसकी बातों पर ध्यान न दिया करो) हे कृष्ण ! विश्वास करो ! मुझे गोवंश की शपथ है और मैं यह दृढ़ता से कहती हूँ कि तुम मेरे पुत्र हो और मैं तुम्हारी माता हूँ।

पद ७। शब्दार्थ—हियो=हृदय। कमल नयन=कमल के समान नेत्र वाले कृष्ण। सम्पदा=सम्पत्ति। सपनेउ=स्वप्न में भी। याहीते=इसीलिये। निधि=कोष। लरिका=लड़का। इती=इतनी। जड़ताई=कठोरता। दै करताल=ताली बजा कर। जाहि=जिससे। डराई=भयभीत है। निगम=वेदादि। नेति=अपूर्ण।

संदर्भ—कृष्ण जो परमब्रह्म हैं उनको यशोदा बांधती नचाती हैं पर उनके परम भाग्य की सराहना करते हुये सूरदास जी कहते हैं।

पदार्थ—हे यशोदा ! तेरा हृदय बड़ा ही विचित्र है। कमल के समान नेत्र वाले कृष्ण (परमात्मा रूप) को तूने केवल माखन के कारण ही ऊखल से लाकर बांध दिया। कदाचित् तुझे इस बात का अभिमान हो गया है कि जो सम्पत्ति देवताओं और मुनियों को भी सरलता से प्राप्त नहीं हो सकती वह तुझे किसी भी कठिनाई के बिना घर बैठे ही प्राप्त हो गई है। एक समय तो ऐसा था कि तेरा हृदय इतना कोमल था कि दूसरे के पुत्र को रोता सुन तू दौड़ कर उठा उसे अपने हृदय से लगा लेती थी और आज तू इतनी कठोर हो गई है कि अपने पुत्र को इस प्रकार दंड देती है। बारंबार कृष्ण नेत्रों में अश्रु भर कर रोते हैं। यह देख यशोदा का हृदय द्रवीभूत होता है और वह कहती है कि मैं क्या करूँ तेरे ऊपर बलिहार जाऊँ। मैं तुझे तेरी शपथ खाकर छोड़ देती हूँ (कि अब माखन न चुराओगे)। यशोदा के भाग्य को धन्य है कि जो रूप जल और थल में सर्वत्र व्याप्त है तथा वेदादि भी जिसके अन्वेषण में व्यस्त है किन्तु उसका ठीक पता नहीं पाते हैं उसे यशोदा ताली बजा बजाकर अपने आँगन में नचा रही हैं। जो देवताओं की रक्षा करने वाला, समस्त राक्षसों का संहार करने वाला है तथा तीनों लोकों के प्राणी जिसका भय मानते हैं तथा प्रभु के इस चरित्र का वेद भी पार नहीं पाते हैं उसे ही यशोदा नचा रही है।

पद ८। शब्दार्थ—भोर=प्रातःकाल। भयो=हुआ। पठायो=भेज दिया। चार पहर=दिन भर। भटक्यो=भ्रमण किया। सांझ=संध्या। मनकी=स्वभाव से। भोरी=सरल। पतियायो=विश्वास कर लिया। परायो=दूसरे का। जायो=पुत्र। लकुट=लकड़ी। बहुतकि=अत्यन्त।

संदर्भ—यशोदा कृष्ण को माखन चुराने का दोषी बतलाती हैं तथा कृष्ण अपराधी न होने की पुष्टि करते हैं।

पदार्थ—हे माता ! मैंने माखन नहीं खाया। तुम स्वयं विचार करो कि प्रातःकाल होते ही तो मुझे गैयों के पीछे मधुवन भेज दिया था तथा दिन भर वंशीवट में भ्रमण करते करते सन्ध्या समय घर लौट कर आया। मै कब माखन चुराता। यदि इतने पर भी मुझ पर ही शंका है तो देखो मैं बालक हूँ और मेरे हाथ छोटे है मैं सीके को किस प्रकार पा सकता हूं। मेरे मुख में लगे माखन को देख तुम्हे शंका हो रही है सो यह तो ईर्ष्यावश ग्वालवालो ने बलपूर्वक मेरे मुंह में लगा दिया है। हे माता ! सचमुच ही तू स्वभाव की अति ही सरल है कि इनके कहने से ही तुझे विश्वास हो गया। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे दूसरे का पुत्र जानकर तेरे मन में कुछ भेदभाव उत्पन्न हो गया है। (अब मै यहां नहीं रहना चाहता) यह तेरी लकड़ी और कंबल संभाल, तूने मुझे बहुत नाच नचा लिया। यह देख यशोदा को हंसी आ गई और उन्हें हृदय और कंठ से लगा लिया।

पद ६ शब्दार्थः—नैंना = नेत्र। ढीठ = निर्भीक। लकुट = लकड़ी। तौहूँ = तो भी। यै = ये। न नये = नही झुके। कपाट = किवाड। ओट = आड़। भेंटि गये = मिल गये। आतुर = शीघ्र। भेस = वेष। धरा = धारण किए हैं। लुब्धे = लोभायमान हुए। निरखि = देखकर। नन्द जए = कृष्ण की।

संदर्भ—कृष्ण की छवि पर मुग्ध नेत्र सांसारिक लज्जा की ओर ध्यान न देकर उनकी सुन्दर छवि का रसास्वादन करते हैं।

पदार्थ—ये नेत्र बहुत ही निर्भीक हो गये हैं। इन्हे लज्जा रूपी लकड़ी का भय दिखाकर त्रास दिया तो भी ये नीचे न हुए। पलक रूपी किवाड़ों को तोड़कर घूंघट की आड़ में अपने प्रिय से मिल लिये (कोई दूसरा देख भी न पाया।) गुण के आगार श्रीकृष्ण से वे शीघ्र ही जाकर मिल लिये। ये नेत्र मुकुट, कुंडल; पीताम्बर सुन्दर कटि और वेष धारण किए हुए नन्द के पुत्र कृष्ण की सुन्दरता को देखकर मुग्ध हो गये हैं।

प्रेयसि लोक लाज को त्याग अपने प्रेमी के दर्शन के लिये लालायित रहती है और किसी न किसी प्रकार अपने प्रिय की मोहक छवि का दर्शन कर ही लेती है। इसी चित्र का चित्रण यहां किया गया है।

पद १० शब्दार्थः—काहू = किसी ने भी। लह्यो = लिया। पतंग = पतगा। सो = से। आपै = अपने। अलि सुत = भ्रमर। जल सुत = कमल। सम्पुट = तह। सारग = हरिण। नाद = गायन की ध्वनि। माधव = कृष्ण। चलत न कछू कह्यो = कुछ भी कहना नहीं चलता।

सदर्भः—प्रीति कभी भी सुखद नहीं होती इस कथन की पुष्टि करते हुये गोपियां कहती हैं कि—

पदार्थः—प्रेम करके संसार में किसी को भी शांति प्राप्त नहीं हुई। पतंगे ने दीपक से प्रेम किया और उसके चक्कर लगाये परिणाम यही हुआ कि बेचारे को अपने प्राणो की आहुति देना पड़ी। यह है प्रेम का परिणाम। भ्रमर ने कमल से प्रीति की और उसके समीप रसपान के हेतु जाने पर उसे कमल के भीतर ही बंद हो जाना पड़ा। हरिण व्याध की मधुर गायन ध्वनि पर मुग्ध हुआ और फल स्वरूप व्याध के बाण का लक्ष्य बनकरप्राण गवांना पड़े। हमने भी कृष्ण से प्रीति की सो हमारा

कहना तो कुछ भी नहीं चलता वरन् उनके पीछे पीछे ही दौड़ना पड़ता है। उनके बिना हमारा विरह दुःख द्विगुणित हो गया तथा नेत्रो से अश्रु प्रवाह प्रवाहित हो रहा है।

भावार्थः—ईश्वर से प्रेम वही कर सकता है जिसमें अपना सर्वस्व उसके अर्पण करने की शक्ति हो। उसकी शरण में पहुँचकर सांसारिक माया की ओर लौटना असंभव है।

पद ११ शब्दार्थः—अनाथ=बिना स्वामी के। सजनी=सखी। सिधारे=चले गये। वे=कृष्ण। जल सर=तालाब का जल। मीन=मछली। बापुरी=बेचारी। जिवहिं=जीवित रहें। किनारे=विलग होकर। वदन=मुख। सुधा निधि=चंद्रमा। आस=आशा। जोइ=देखकर। मग=मार्ग। मृतकहुँते=मृतक को। पुनि=फिर से। मारे=मारा।

संदर्भः—श्रीकृष्ण जी के द्वारका चले जाने पर गोपियों की विरह में क्या दुर्दशा होती है, वे कितनी व्याकुल होती हैं, इसका चित्रण सूरदास जी करते हैं।

पदार्थः—आज हमारे नेत्र स्वामीहीन हो गये। उनका लक्ष्य आज उनके समक्ष नहीं हैं। वे असहाय हैं। हे सखी! सुना है कि मदन गोपाल कृष्ण यहां से कहीं दूर चले गये हैं। उनके जाने से हमारी वही दशा हो गई जैसे जल के बिना मछली की होती है। कृष्ण हमारे लिये तालाब के जल के सदृश थे और हम मछली के समान हैं। हम बेचारी उनसे अलग होकर कैसे जीवित रह सकेंगी अर्थात् नहीं रह सकेंगी। हम चातक हैं और कृष्ण का मुख चंद्रमा के समान है। जिस प्रकार चातक चंद्रमा की ओर टकटकी लगाकर देखता और सुखी होता है वही दशा हमारी है। अब उनके बिना हमें कैसे धैर्य प्राप्त हो सकता है। हम मधुवन में बैठकर उनके दर्शन की आशा

में हैं तथा मार्ग देखते देखते हमारे नेत्र थक गये और कृष्ण के दर्शन अभी तक प्राप्त नहीं हुये। हमारे प्यारे श्याम ने यह दशा की कि हम तो पहले ही मृतक के समान हो गये थे और अब दर्शन न देकर और भी अधिक दुखी बना दिया। मरे को और मार दिया।

वियोगावस्था का उल्लेखनीय चित्र का चित्रण है।

(पद १२) शब्दार्थ—लौ=तक। कीजै=करें। अगाध=अथाह। अगम=जहां गति न हो। अगोचर=अदृश्य। वरन=वर्ण। वपु=शरीर। नाहिन=नहीं। सखा=मित्र। सहाई=सहायक। ता=उस। निर्गुण=गुणहीन। नेह=स्नेह। निरन्तर=सदैव। निबहै=निर्वाह होगा। तरग=लहर। भीति=दीवाल। लेखन=चित्रकारी। चेतहि=बुद्धि। माधुरी मूरति=सुन्दर मूर्ति। उरझाई=उलझ रही है।

संदर्भ—उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर आते हैं कि ब्रज में उन्हे कोई आकर्षण नहीं है और वैराग्य की भी शिक्षा देते हैं इस पर गोपिया कटाक्ष कहती हुई करती हैं।

कृष्ण की कहां तक अधिक कीर्ति गावे (वह तो कृतघ्नी हैं)। वह अति गम्भीर स्वभाव वाले हैं। मनसे उनके पास पहुँचना और उन्हे देखना कठिन है (क्योकि हम माया में लिप्त हैं)। उसके रूप और आकृति, वर्ण और शरीर तथा मित्र और सहायक नहीं हैं, हे माई, ऐसे निर्गुण (सांसारिक माया से मुक्त) से हम लोगों का स्नेह किस प्रकार सदैव निर्वाह हो सकता है (कभी न कभी उसका अन्त होगा ही)। प्रेम का अस्तित्व दो पक्षों पर निर्भर है-प्रेमी और प्रेयसि। आधार के बिना आधेय का अस्तित्व असम्भव है। जिस प्रकार जल के बिना लहर का दीवाल के बिना चित्र का, और बुद्धि के बिना बुद्धिमानी का

अस्तित्व असम्भव है उसी प्रकार कृष्ण जो हमारे प्रेम का आधार हैं-के बिना हमारे प्रेम का कोई मूल्य नहीं है। हम लोगों के इतना कहने पर भी उद्धव के कथनानुसार कृष्ण को इस ब्रज में कोई आकर्षण नहीं है। (कृतघ्न की कोई सीमा भी होती है!) हम लोगों की दशा को तो देखो कि मन में वही माधुरी मूर्ति हृदय में स्थित है जिसका वियोग दुखदायी हो रहा है और अंग प्रत्यंग में जो हमारे मन को उलझाये है। हमें वो सुख देने वाला वही कमल की पंखुड़ी के समान नेत्र वाला श्याम है।

भावार्थ—गोपियां कृष्ण पर मोहित हैं, किन्तु कृष्ण को कोई आकर्षण प्रतीत नहीं होता। यह उनके ईश्वरीय निर्मोही गुण का परिचय है। लोगों का भ्रम है कि कृष्ण कामी थे। उस शंका का समाधान यहां होता है।

(पद १३) शब्दार्थ—बिसरत नाही=नहीं भुलाया जाता। अरु=और। कुन्जन=उपवन। छाहीं=छाया। सुरभी=गौयें। बच्छ=बछड़े। दोहनी=दूध दोहना। खरिक=खिरका, वह स्थान जहां पशु एकत्र रहते हैं। कोलाहल=शोर। गहि गहि= पकड़ कर। बाहीं=हाथ। कन्चन=स्वर्ण। सुरति=स्मरण। जिय=हृदय। उमगत=उमग से भर जाता है। तनु=शरीर। अनगन=अगणित। जसुदा=यशोदा। मौन है=मौन धारण कर। पछिताहीं=पश्चात्ताप करते है।

संदर्भ—उद्धव जी जब ब्रजवासियों की वियोगावस्था का चित्रण कृष्ण के सामने करते हैं तब कृष्ण को भी ब्रज जीवन का स्मरण हो आता है। यह स्मृति उन्हें परम दुखदाई हो जाती है कि वे क्षोभ के कारण मौन धारण कर ही रह जाते हैं। कृष्ण जी कहते हैं कि—

पदार्थ—हे उद्धव। ब्रज की परम स्मृति मुझे दुःख दिया करती है, बिलकुल भी भुलाई नहीं जाती सूर्य पुत्री यमुना के सुन्दर किनारे और उपवनों की सुखद शीतल छाया आज भी मुझे स्मरण हो आती है। वे गौएं और बछड़े जिसके साथ मैं वन जाता था, दूध दोहने का वर्तन और खिरका में दूध लगाने जाना, सब ग्वाल वालों का शोर करना और हाथ पकड़ पकड़ कर नृत्य करना, वह स्वर्ण पुरी मथुरा, जहां मणि और मुक्ताओं की शोभा है, जब भी मुझे उस सुख का स्मरण हो आता है तभी मन उमंगों से भर आता है और यह शरीर नहीं रह जाता अर्थात उमंग भावनाओं में शरीर की सुध नहीं रह जाती है। यशोदा और नन्द के घर भांति भांति के अगणित चरित्र करके उनके वात्सल्य को निवाहा। यह कह कर कृष्ण पश्चाताप करते हैं और अवाक रह जाते हैं। वह परम स्मृति उन्हें अपने आप में लवलीन कर लेती है।

विशेष—यहां भी कृष्ण की सबको स्मृति व्याकुल कर रही है, किन्तु गोपियों की चर्चा नहीं आई। कृष्ण वासना प्रिय नहीं थे।

(पद १४) शब्दार्थ—छांड़ि=त्याग। बिमुखन=विरोधी कुबुधि=दुर्बुद्धी। उपजाते है=उत्पन्न होती है। परत=पड़ता भंग=विघ्न। पय=दुग्ध। तजत=त्यागता। भुजंग=सर्प। कागहि=कौआ। खवाये=खिलाने से। स्वान=कुत्ता। न्हवाये= स्नान कराने से। गंग=गंगा मे। खर=गधा अरगजा= चन्दन। मरकट=बन्दर। भूषण=आभूषण, गहने। गज= हाथी। सरिता=नदी में। धरै=फेंकता है। खेहि=धूल। छंग= शरीर पर। पाहन=पाषाण, पत्थर। पतिति=नीच। बान= बाण। निषंग=तूणीर। खल=पापी, दुष्ट। दूजो=दूसरा।

प्रसंग—दुष्ट और हरि-विरोधी का साथ हानिकारक होता है और वह अपने स्वभाव को नहीं त्यागता, इसकी पुष्टि करते हुये कवि कहता है।

पदार्थ—हे मन! जो हरि के विरोधी हैं, जो उनका भजन नहीं करते ऐसे व्यक्तियों का साथ छोड़ देना ही उत्तम है। उनकी संगति में हानि के अतिरिक्त लाभ नहीं है। उनका साथ करने से हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तथा भजन के कार्य में विघ्न उपस्थित हो जाता है। यदि तुम उन्हें ठीक मार्ग पर लाना चाहो तो वे नहीं आवेंगे। सर्प को दुग्ध पान कराने से क्या लाभ होगा, वह विष कदापि नहीं त्यागेगा। कौवे को यदि कपूर खिलाया जावे तो इससे वह अशुद्ध वस्तुओं का भक्षण करना नहीं छोड़ देगा। कुत्ते को पवित्र गंगा में स्नान कराने से वह अशुद्ध स्थानों पर जाना कभी नहीं छोड़ेगा। यदि गधे को चन्दन का लेपन करो तो भी वह घूरे पर जाए बिना न मानेगा, पृथ्वी पर अवश्य लौटेगा। बन्दर गहनों के मूल्य को क्या समझे, यदि उसे आभूषण पहिना दो तो वह उन्हें तोड़कर फेंक देगा। हाथी को नदी में स्नान भले ही करा दो; किंतु स्नान करने के पश्चात वह अपने स्वभाव के अनुसार पुनः धूल से शरीर को अवश्य ही अपवित्र करेगा। कठोर पत्थर पर निरन्तर वाणों की वर्षा करते करते भले ही तरकस खाली हो जावे, उसमें एक भी वाण शेप न रह जावे किन्तु उसमें वाण कदापि नहीं बिधेगा। इसी भांति सूरदास, जो खल है उस पर श्याम के अतिरिक्त और किसी का प्रभाव नहीं पड़ सकता जिस प्रकार काले रंग के कम्बल पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता। उस पर कोई भी रंग चढ़ाओ वह काले रंग में छिप जावेगा।

भावार्थ—स्वभाव कभी बदलता नहीं है चाहे कितना भी उपाय करो।

पद १५ शब्दार्थ—बलिजाऊँ=बलिहारी है। सिंहासन=राज्याशन। तजि=त्यागकर। कौ=को। नाऊं=नाम। गुरु बांधव=एक ही गुरु के शिष्य होने के कारण उत्पन्न हुआ भ्रातृत्व भाव। अरु=और। विप्र=ब्राह्मण। कै=कर। हाथनि=अपने ही हाथों से। पखारे=धोये। अंक=गले में। माल दै=माला पहिनाकर। बूझि=पूछकर। अर्धासन=आसन के अर्ध भाग पर। अर्धांगी=स्त्री, रुक्मणि। बूझति=पूछती हैं। सौं=से। हितू=मित्र। तिहारे=तुम्हारे। दुरबल=दुर्बल। दीन=सम्पत्ति हीन। छीन=क्षीण (शरीर)। हौं=मैं। पाऊं=पांव, पैर, पद। तैं=से। पाऊ कहां तै धारै=कहा से आये हैं। संदीपन=ऋषि, जो कृष्ण और सुदामा के गुरु थे। चटसार=स्थान। कौन चलावै=क्या वर्णन किया जावे। भगतनि=भक्तों पर। अपार=जिसका छोर न हो।

संदर्भ—सुदामा जो दरिद्रावस्था में थे कृष्ण के यहां जाते हैं तथा कृष्ण उनका सत्कार अच्छी तरह कर मैत्री का परमादर्श हमारे समक्ष उपस्थित कर अपनी निस्वार्थता का परिचय देते हैं। सूरदास जी उसी का चित्रण इस प्रकार करते हैं कि—

पदार्थः—इस प्रकार की आदर्श प्रीति पर बलिहार जाऊँ। सुदामा का नाम सुनते ही उनसे मिलने के हेतु कृष्ण राज्य सिंहासन को त्याग कर चल पड़े। सुदामा से तो दो सम्बध थे एक तो गुरु भाई थे और द्वितीय ब्राह्मण थे। दोनों प्रकार आदर के पात्र समझ कृष्ण ने अपने हाथों से उनके पवित्र चरणो को जल से धोया। तत्पश्चात् गले में पुष्प-माला पहिनाकर तथा कुशल

समाचार पूछकर अपने आसन के अर्धभाग में सुदामा को आसन दी। (यह देख रुक्मणी को चिंता हुई कि मेरा अर्धभाग इन्हें प्राप्त हो गया।) कृष्ण की अर्धांगिनी कृष्ण से पूछती हैं कि ये तुम्हारे कैसे मित्र हैं। सुदामा की दशा देखकर रुक्मणी ने यह व्यंग किया है।) शरीर में दुर्बल, दशा से दरिद्र और क्षीण, मैं इन्हें देख रही हूँ, ये कहाँ से आये हैं। (यही तुम्हारे मित्र हैं।) इस प्रकार वचन सुन कृष्ण ने साधारण रीति से उत्तर दिया हम और सुदामा संदीपन ऋषि के यहाँ एक ही स्थान पर पढ़े हैं, वही यह मित्रता है। सूरदास जी कहते हैं कि श्याम की बात को क्या कहना है, भक्तों के ऊपर तो उनकी अपार कृपा रहती है।

विशेषः—रुक्मणी ने व्यंग अवश्य किया; किंतु वे यह न समझ सकीं कि अर्धासन पर बैठते ही सुदामा को सारी सम्पति प्राप्त हो चुकी थी; क्योंकि वह स्थान भगवान की अर्धांगी लक्ष्मी का था। वह स्थान ग्रहण करते ही सुदामा को त्रिलोक का वैभव प्राप्त हो चुका था। यही अपार कृपा का परिचय है।

पद १६ शब्दार्थः—भक्तन=भक्तों। सुनु=सुनो। परित्तिग्या =प्रतिज्ञा। व्रत=संकल्प। भक्तै=भक्त के। काज=हेतु। लाज =लज्जा। हिय=हृदय। धरिके=धारण करके। पाइ=पाँव। पयादे=बिना वाहन के। धाऊँ=दौड़ता हूँ। जहँ जहँ=जहां-जहाँ। भीर=आपत्ति। परै=पड़ती है। जाइ=जाकर। छुड़ाऊँ =मुक्त करता हूँ। बैर=शत्रुता। निज=स्वयं का। कारन= कारण। विचार=मानता हूँ। विरोधी=विरोध करने वाला। जारौं=भस्म कर देता हूँ।

सन्दर्भः—कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो भक्त मुझे चाहते हैं उस भक्त को सब प्रकार मैं चाहता हूँ और उसके शत्रुओं का नाश करता हूँ। यही मेरा सच्चा प्रण है जिससे मैं कभी विचलित नहीं होता।

पदार्थः—मेरा सर्वस्व मेरे भक्तों के लिये है और भक्तों का सर्वस्व मेरे लिये है। जो भक्त मुझे मन वचन और कर्म से पूज्य मानते हैं मैं उनके लिये सब कुछ करने को तत्पर हूं। हे अर्जुन! सुनो मेरी यही प्रतिज्ञा है और यह संकल्प किसी प्रकार भी भंग नहीं हो सकता। भक्त के हेतु उसके मान का विचार हृदय में धारण कर बिना वाहन के ही उसकी रक्षा के लिये दौड़ पड़ता हूं। जहां कहीं भी मेरे भक्त पर संकट आता है मैं उसी स्थान पर पहुँचकर उसकी रक्षा करता हूं। जो प्राणी मेरे भक्त से शत्रुता का व्यवहार करता है वह स्वयं मुझसे शत्रुता करता है। वह मेरा शत्रु है। अर्जुन! तू स्वयं विचार कर देख कि मैं तेरा रथ क्यों हांकता हूं। यह तेरी भक्ति का ही फल है जिसके कारण मैं तेरा सारथी बना हूं। भक्त की जीत में मेरी विजय और उसकी हार में ही मेरी पराजय है। सूरदास जी कहते हैं कि प्रभु का यह दृढ़ निश्चय है कि जो भी उनके भक्त का विरोध करता है उनके भक्त को कष्ट देता है उसे वे अपने सुदर्शन चक्र का लक्ष्य बना कर भस्म कर देते हैं।

भावार्थ—जिस भाव से हम ईश्वर को मानेंगे उसी भावना से उनका व्यवहार भी हमारे साथ होगा।

मीराबाई

(पद १) शब्दार्थ—अधर=ओंठ। सुधा रस=अमृत। राजति=शोभित होती है। उर=हृदय, छाती। वैजन्ती=वैजयन्ती राम की माला। क्षुद्र घंटिका=छोटी सी घण्टी। कटि=कमर। नूपुर=पायल। रसाल=मधुर। भक्त बछल=भक्तों को आनन्द देने वाले।

भावार्थ—भक्त मीरा यह कामना करती हैं कि श्री कृष्ण का परम सुन्दर रूप सदैव उनके नेत्रों में बास किया करे। भगवान कृष्ण का सांवला रंग का बड़ा ही मनोहर रूप है। उनके नेत्र भी बड़े बड़े है। अमृत के समान आनन्द दायक ओठों पर वंशी और हृदय पर वैजयन्ती माला लटकती रहती है। उनकी कमर की छोटी सी घण्टी और पैरों की पायलों की घुंघरुओं का बड़ा ही मधुर शब्द होता है। मीरा जी कहती है कि भगवान का यह बालरूप साधु और भक्त जनों को परम आनन्द देने वाला है।

(पद २) शब्दार्थ—साधो=साधु । राजी=प्रसन्न । छोई=सारहीन पदार्थ । राम लगन=भगवान में प्रीति । राणा=मेवाड़ का राजा।

भावार्थ—मीरा कहती हैं कि गिरिवर पर्वत धारण करने वाले कृष्ण के सिवाय और कोई भी व्यक्ति इस संसार में मुझे प्रिय नही लगता। मैंने उन कृष्ण के प्रेम के ही कारण सगे सम्बन्धी भाई बन्धु इत्यादि त्याग दिये हैं। अब मैंने लोक लज्जा छोड़ कर भगवान के भक्तों के साथ सत्सङ्ग करना शुरु कर दिया है। मुझे अब भक्तों को देखकर प्रसन्नता और संसारी व्यक्तियो को देख कर दुःख होता है। मैंने भगवान के प्रेम में अपने आंसू बहाये हैं और अब मानो इन आसुओं से ही सींच कर मेरी भक्ति रूपी लता बोई गई है। मैंने यह संसार रूपी दधि मथकर कृष्ण रूपी घी निकाल लिया है और सार हीन द्रव्य ससारियों के छोड़ दिया है। श्रीकृष्ण के प्रेम का ही यह प्रभाव है कि राणा का भेजा हुआ विष भी मुझे आनन्द दायक हो गया। मुझे तो अब भगवान से प्रीति हो गई है, यह बात सारे संसार को विदित हो गई है। कुछ भी क्यो न हो अब मैं अपनी भक्ति छोड़ने वाली नहीं हूं।

(पृष्ठ ७८) पद ३। शब्दार्थ—मानुसा=मनुष्य। बिरछ =वृक्ष। विषय=सांसारिक भोग। श्रोखो धार=उसकी प्रबल धार। सुरत=भगवान का स्मरण। बेड़ा=नाव। महानता= महान।

भावार्थ—मीरा कहती हैं कि पूर्व जन्मो के पुण्य उदय होने पर ही मनुष्य शरीर प्राप्त होता है बार बार यह मनुष्य जन्म नहीं मिलता है। क्रमशः यह शरीर बढ़ता है और फिर धीरे धीरे नष्ट होने लगता है। इस शरीर का अन्त होने में देर नहीं लगती। जिस प्रकार वृक्ष का पत्ता टूट कर दुबारा नहीं लग सकता उसी प्रकार मृत्यु होने के बाद दुबारा यह अवसर प्राप्त नहीं हो सकता। यह ससार रूपी सागर बड़ा ही भयानक है। विषय भोग ही उसकी प्रबल धार है। मनुष्य भगवान के स्मरण रूपी जहाज द्वारा इस संसार को तरने में समर्थ हो सकता है। महान् साधु सन्त भी यही बात बतलाते हैं। यह जीवन बहुत ही थोड़ा है अतः गिरधर कृष्ण का ही भजन करना चाहिये।

(पद ४) शब्दार्थ—परसि=स्पर्श कर। सुभग=सुन्दर। अटल=स्थिर। घरन=पत्नी। कालिहि=कालिया नाग। मघवा=इन्द्र। अगम=कठिन।

भावार्थ—मीरा अपने मन को सम्बोधित कर कहती हैं तू भगवान के चरणो का ध्यान कर। उनके चरण परम सुन्दर शीतल और कमल के समान कोमल है। वे अनेक प्रकार की आपत्ति रूपी ज्वालाओ को शान्त करने वाले हैं। उनके चरणों का स्पर्श कर प्रह्लाद को इन्द्र की पदवी प्राप्त हुई थी। इन चरणों के प्रेम के कारण भगवान ने ध्रुव को अपनी शरण में ले लिया और उनको अचल राज्य का स्वामी बना दिया। भगवान ने वामन अवतार धारण कर राजा बलि से दान में

सारे विश्व को अपने चरणों से नाप कर बलि को भी नाप कर उसके दान को पूरा किया। प्रभु के चरणों का स्पर्श पाकर पत्थर बनी हुई गौतम की पत्नी ने मुक्ति प्राप्त की। इन्हीं चरणो ने गोपो ग्वालों के साथ लीला करते हुये कालिय नाग के ऊपर नृत्य किया और उसे नाथ लिया। ऐसे प्रतापी चरणों वाले भगवान ने ही गोवर्धन पर्वत को धारण कर ब्रज की रक्षा की और इन्द्र का गर्व चूर चूर किया। मुक्ति प्राप्त करना बड़ा कठिन है किन्तु भगवान के चरणो के ध्यान से वह सरलता से ही मिल जाती है।

(पद ५) शब्दार्थ—कान्हो=कृष्ण। नागर=चतुर। सीर=सिर।

भावार्थ—मीरा जी अपने मन को सम्बोधित कर कहती हैं कि तू गंगा यमुना के किनारे चल। उनके निर्मल जल से शरीर पवित्र हो जाता है। वहां पर तुझे मोर मुकुट, पीताम्बर और हीरे झलकते हुये कुण्डल धारण किये हुये अपने भाई बलराम को साथ लिये भगवान कृष्ण वंशी बजाते और गीत गाते हुये मिल जावेंगे। मीरा कहती हैं कि परम चतुर कृष्ण के कमल के समान चरणो पर अपना सिर रखना चाहिये।

(पद ६) शब्दार्थ—टोना=जादू। गुजरिया=ग्वालिन। छोना=पुत्र। नेह=प्रेम। सुघर=चतुर।

भावार्थ—इस ब्रज में मैंने अद्भुत जादू देखा है। एक ग्वालिन अपने सिर पर दही की मटकी लेकर बेचने निकली। राह में उसे नन्द जी के पुत्र कृष्ण मिल गये। वह ग्वालिन उनको देखकर उनके प्रेम में रंग गई। और दही का नाम भूल कर वह कहने लगी ले लो श्याम सुन्दर। मीरा कहती है कि परम चतुर आनन्द दायक श्याम सुन्दर वृन्दावन की कुन्ज

गलियों में अपना प्रेम फैला गए हैं अर्थात् यहां के लोग उसके मन को मोहने वाले रूप के वश में हो गये है।

(पद ७) शब्दार्थ—म्हारा=मेरा। ओलगिया=प्यारा, प्रेमी। घन=बादल। भो=संसार। कंमोदनी=कुमुदनी। विरहिनी=प्रेमी के दूर रहने के कारण दुखित। दुख-दुन्द=दुख द्वन्द्व, सभी कष्ट। नसाया=नष्ट हो गये।

भावार्थ—मेरा प्रेमी मेरे घर आ गया है। मेरे शरीर के सभी कष्ट मिट गये है और मैं अत्यन्त आनन्दित हो कर मंगल गीत गा रही हूँ। जिस प्रकार बादलो की गर्जना से मोर को प्रसन्नता होती है उसी प्रकार प्रेमी के आजाने से मैं आनन्दित हो गई हूँ। अपने प्रभु से मिल जाने पर संसार के कष्टों से छुटकारा मिल गया है। जिस प्रकार चन्द्रमा को देख कर कुमुदिनी खिल जाती है उसी प्रकार मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ है। भक्तो के कार्य सम्भालने वाले भगवान की मुझे प्राप्ति हो गई है मीरा कहती हैं कि मेरे सभी प्रकार के कष्ट दूर हो गये हैं और मेरी विरह की जलन भी अब शान्त हो गई है।

(पद ८) शब्दार्थ—अविनाशी=नाश न होने वाले। धरण गगन=आकाश पृथ्वी। देही=शरीर। चहर=जादू। करवत कासी=काशी में प्राण त्याग करना। भगवा=गेरू से रंगे वस्त्र। अरज=विनती। अबला=बल हीन।

भावार्थ—हे मन, तू भगवान के सदा रहने वाले चरण कमलों का ध्यान कर। आकाश और पृथ्वी के बीच में जो कुछ भी दिखता है वह सभी एक दिन नष्ट हो जायगा। इस शरीर का भी गर्व नहीं करना चाहिये क्योंकि यह भी एक दिन मिट्टी में ही मिलने वाला है। यह अद्भुत संसार जादूगर के खेल के समान है कभी न कभी इसकी लीला समाप्त ही हो जावेगी।

योगी होकर भी यदि भगवान की भक्ति रूपी युक्ति नहीं जानी तो फिर जन्म धारण ही करना पड़ेगा। तीरथ व्रत करने और काशी में प्राण त्याग करने से अथवा गेरुए कपड़े पहिन कर सन्यासी हो जाने मात्र से कुछ नहीं होता मीरा कहती है कि हे चतुर गिरिधर मैं यह दीन दासी दोनों हाथ जोड़ कर विनती करती हूँ कि यम की फांसी अर्थात् आवागमन का बन्धन दूर कर दो मेरा। मुझे फिर जन्म धारण न करना पड़े।

बिहारी

(पृष्ठ ८५) प्रथम चार दोहे—सघन कुन्ज ...... होती॥

शब्दार्थ—सघन=बहुत घनी। कुन्ज=लताओं और झाड़ियों का समूह। समीर=वायु। वहै=बहाना रहा है। तीर=किनारा। सुभग=सुन्दर। सिरमौर=सर्व श्रेष्ठ। दृगनि=आंखें। ठौर=स्थान। पीत पट=पीला वस्त्र। सलोने=सुन्दर। गात=शरीर। नील मनि सैल=नीले रंग का पर्वत। आतप=सूर्य का प्रकाश। अधर=निचला ओंठ। दीठ=दृष्टि, आंख। जोति=ज्योति। हरित=हरे।

भावार्थ—(१) घनी लताओं और झाड़ियों की ठन्डी धीमी और सुख देने वाली वायु गोपी के मन को आकर्षित कर कर रही है, क्योंकि जमुना किनारे की उन्हीं कुन्जों में भगवान कृष्ण विहार किया करते थे।

(२) जिन जिन स्थानों पर भगवान कृष्ण को गोपियां देखा करती थीं, उन स्थानों पर पहुँचने पर गोपियों का मन भगवान कृष्ण के न होने पर भी वहीं रम जाता था। क्योंकि वे

स्थान उन्हें श्रीकृष्ण का स्मरण दिला देते थे और वे अपनी सुध बुध खो बैठती थी। उनकी आंखें एक टक उन्हीं की ओर निहारने में लग जाती थीं।

(३) भगवान कृष्ण अपने सांवले शरीर पर अपना पीताम्बर धारण किये हुए थे। उस समय उनके शरीर की शोभा बहुत ही अधिक बढ़ गई थी। ऐसा मालूम होता था कि नील मणि पर्वत पर सूर्योदय होने पर किरणें पड़ रही हों।

नोट:—कवि ने यहां पर कृष्ण के शरीर को पर्वत और पीताम्बर को सूर्य के प्रकाश के समान बतलाया है।

(४) भगवान कृष्ण जब बांसुरी बजाया करते थे तो उसमें इन्द्र धनुष के समान कान्ति की उत्पत्ति हो जाती थी। क्योंकि उनके लाल ओंठ, पीले वस्त्र और उनकी आंखों के सफेद और काले रंगों का प्रतिबिंब उस पर पड़ा करता था।

द्वितीय चार दोहे—लिखन बैठि ·········कहा बसाय ॥

शब्दार्थ—छबिहि=चित्र। गरब=गर्व। गरूर=घमण्ड चितरे=चित्रकार। क्रूर=दुष्ट। अनुरागी=प्रेमी। श्याम= काला। उज्जवल=निर्मल, स्वच्छ। जागत=जागते हुये। बैसिये=बैठ कर। कपाट=दरवाजा। बाट=रास्ता।

नैन=आंखें।

भावार्थ—बिहारी कहते हैं कि एक स्त्री इतनी अधिक सुन्दर थी कि उसकी तस्वीर कोई भी चित्रकार न बना सका। संसार के अनेक चित्रकारों ने घमण्ड और गर्व के सहित उसकी फोटो बनाने की चेष्टा की किन्तु उन सभी दुष्टों का घमण्ड चूर चूर हो गया।

इस प्रेम भरे चित्र की गति को कोई भी नहीं समझ सकता। क्या ही विचित्र बात है कि जब यह भगवान कृष्ण

के प्रेम में रंग जाता है तो अधिकाधिक निर्मल और पाप रहित बनता जाता है। उनका काला रंग अपना प्रभाव नहीं डाल पाता।

जागते और सोते रहने पर हम देखते हैं कि हम किसी भी बाहरी वस्तु को अन्दर न आने देने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु यह प्रेम ऐसी अद्भुत वस्तु है कि हम उसके हृदय में आ जाने और चले जाने को किसी भी प्रकार नहीं देख पाते। अर्थात् प्रेम अनजाने ही धीरे धीरे हो जाया करता है।

मैंने बहुत प्रयत्न किया कि ये आंखें मेरे वश में रहें किन्तु ये जबभी किसी के प्रेम में रंग जाती हैं तो शरीर और मन की दशा भी बदल देती हैं। शरीर तो प्रेमी से मिलने के लिए व्याकुल हो उठता है और मन उसी का ध्यान करने लगता है। इस प्रकार की हार देख कर भी इन नेत्रों को प्रसन्नता ही होती है अतः इनसे किसी प्रकार का वश नहीं चल पाता।

तृतीय चार दोहे—लाज लगाम ······· कहां तें होय॥

शब्दार्थ—लाज लगाम=लज्जा रूपी लगाम। मुंहजोर=जबर्दस्त। तुरंग=घोड़ा। ऐंचतहू=खींचने पर भी। सिरजोई=बनाया। विहरि=बहार कर, खेलना। सुचित=पवित्र चित्त वाला। सुचितई=पवित्रता।

ये नेत्र मेरे वश के नहीं हैं क्योंकि ये लज्जा रूपी लगाम द्वारा भी नहीं रोके जा सकते। ये तो उन बलवान घोड़ों के समान हैं जो लगाम खींचने पर भी नहीं रुकते।

पृष्ठः—८६ मेरे इन नेत्रों को किसी भी तरह का सुख नहीं मिल सकता। ये जब प्रेमी के सम्मुख पहुंचते हैं तो बहुत अधिक प्रेम के कारण उसे ठीक तरह से निहार भी नहीं पाते और जब प्रेमी दूर रहता है तब बहुत ही अधिक व्याकुल हो उठते हैं।

बिहारी अपने मित्र को सम्बोधित कर कहते हैं कि अन्य व्यक्तियो को छोड़कर श्रीकृष्ण से ही मोह कर और तुझे उन्हें ही देखना चाहिये । यदि तुझे खेलने की ही इच्छा होती है तो तू कुंज में बिहार करने वाले कृष्ण के साथ ही खेल । और यदि हृदय मे किसी को धारण ही करना चाहता है तो गिरधारी ही इस योग्य हैं ।

ब्रज में रहने वालो के लिये भगवान कृष्ण ही सबसे बड़े धन है । अन्य लोग कृष्ण के महत्व को नहीं जान सकते । ब्रज वासियों के हृदय पवित्र हो गये हैं क्योकि उनके हृदयो में सदैव ही भगवान कृष्ण वास किया करते हैं भला निष्पाप भगवान के आये बिना भी हृदय पापरहित हो सकता है ?

चतुर्थ चार दोहेः—नीकी दई ·······गनो न गोपी नाथ ॥

शब्दार्थः—नीकी = अच्छी । अनाकानी = मुह फेरना । फीकी = धीमी । गुहारि = पुकार । तारन = मुक्त करना । विरद = प्रण । बारक बारन = कई बार । बानि = आदत । बिसराइ = भूल गये । बाय = पागलपन । पतितन = पापी, दीन ।

बिहारी भगवान कृष्ण से कह रहे हैं कि तुमने तो अब मुझसे मुह ही फेर लिया है, यही कारण है कि मेरी पुकार अब तुमको बहुत धीमे स्वर से सुनाई देती है । ऐसा मालूम होता है कि पापियों को मुक्ति देने का प्रण अब तुम भूल ही गये हो क्योकि तुमने अनेक पापियों को मुक्त कर दिया है ।

थोड़े ही गुणों में प्रसन्न हो जाने वाली वह पुरानी आदत तुमने छोड़ दी है । और हे कृष्ण तुम भी आजकल के निष्ठुर दानियों के समान हो गये हो ।

यह दीन कितनी देर से तुमसे पुकार रहाहै किन्तु हे कृष्ण तुम अभी भी सहायता पहुँचाने नहीं आये । तुम्हारे जगतगुरु

और जगनायक नामों में जो जग शब्द आता है मालूम होता है उसी ने तुम्हें जगत् के समान ही पागल बना दिया है।

हे गोपियो के स्वामी कृष्ण मेरे गुण और दुर्गुणों की गिनती मत कीजिये और ऐसा उपाय कीजिये कि अन्य पापियो के साथ मेरा भी उद्धार हो जावे।

पाँचवें चार दोहे:— कोऊ कोरिक ...... निबाहक लाज

शब्दार्थ;—कोरिक=करोड़ों रुपये। विदारन दार=दूर करने वाले। कुबत=कोशिश। कुप्तिला=टेढ़ापन दुर्गुण। त्रिभंगीलाल=बाँसुरी बजाते समय कृष्णजी तीन स्थानों पर तिरछे होकर खड़े होते थे। दुहुन=दोनों को। निबाहन=पूरा करने की।

भावार्थः—बिहारी कहते हैं कि सांसारिक लोग हजारों लाखों और करोड़ो रुपयो को जोड़ते रहते हैं, लेकिन मेरे धन तो यदुवंश के स्वामी कृष्ण ही हैं। सभी कष्टों को दूर करने की शक्ति उन्हीं में है।

हे भगवान मैं तो अपनी आदत के कारण जिस प्रकार का पापी हूँ वैसा ही बना रहूँगा। इसलिये आप मुझे मुक्ति देने को कठिन प्रण मत कीजिये।

आप कितना ही प्रयत्न करें किन्तु हे दीनों पर दया रखने वाले कृष्ण मेरी यह सांसारिक बुराइयाँ नहीं छूट सकतीं। सरल चित्त वाले होने से हे कृष्ण तुमको दुःख ही होगा।

मेरा प्रण है पाप करने का और आपका प्रण है पापियों को तारने का। दोनों ही अपना प्रण पूरा कर अपनी लाज रखना चाहते हैं। हम और आप में यही होड़ लगी है, अब देखना है कि हम दोनों में किसे विजय प्राप्त होती है।

पृष्ठः—८७ अंतिम तीन दोहे—निज करनी रहौं दरबारी

शब्दार्थः—निज करनी = अपने कार्य। सकुचेहि = संकोच या लज्जा करना। विमुख = विपरीत, कहना न मानना। सम्मुख = सामने। अवगुन = बुरे गुण।

भावार्थ—विहारी अपने मन को सम्बोधित कर कहते हैं कि तू अपने बुरे कामों द्वारा स्वयं लज्जित होता है और भी लज्जित करता है। तू सदा मेरे कहने में नहीं चलता अतः भगवान कृष्ण के सामने तो तुझे जाना ही चाहिये।

तुझ में अनेक दुर्गुण ही भरे हुये हैं और तुझे विपत्तियों की ही इच्छाएं रहती हैं। किन्तु यदि तू यदुपति कृष्ण को हृदय में धारण करले तो बिना सम्पत्ति के मालिक हुये भी तेरी सभी कठिनाइयां दूर हो जावेंगी।

बिहारी कृष्ण से प्रार्थना कर रहे हैं कि मैं आपसे अनेकों बार यही विनय करता हूं कि मुझे चाहे जैसे और किसी भी दशा में अपने दरबार में अवश्य ही स्थान दे दो अर्थात् मुझे अपनी शरण में आजाने दो।

यमुना-छवि

(१) यमुना के तट पर तमाल के अनेक वृक्ष लगे हुए हैं। वे तीर (जल राशि) की ओर झुके हुये हैं—मानों जल का स्पर्श करने के लिये। यह दृश्य बड़ा सुहावना है। या फिर वे सब झांककर जल के दर्पण मे अपनी अपनी शोभा देख रहे हैं। या यमुना के जल को उत्कृष्ट फल मानकर उसके लोभ के सामने सादर झुक रहे हैं। या वे तट को धूप से बचने के लिये पंक्तिबद्ध पास पास छाये रहते हैं। या कृष्ण की सेवा के लिये विनत हो

रहे हैं। उनका प्रतिबिम्ब जल में देख कर मन और आंखों को तृप्त करते हैं। शब्दार्थ—उमकि=उछ्गना (उचकना) (१) उछलकर, कूदकर। (२) ताकने के लिये=सिर उठा कर या सिर निकाल कर।

(२) कहीं कहीं तीर पर नाना प्रकार के निर्मल कमल मनोहर ढंग से ऊगे हुये हैं। और कहीं कहीं नदी में सिवार के बीच बीच में कुमुदिनी की पंक्तियां लगी हुई हैं। उन्हें देख कर प्रतीत होता है कि यमुना अनेक नेत्रों द्वारा ब्रज की सुन्दरता देख रही है। या प्रेमी प्रेमिका के (राधा कृष्ण के) प्रेम के अगणित अंकुर फूटे हुये हैं। या यमुना अपने प्रिय को अनेक हाथों द्वारा अपने समीप बुलाती हुई जोह रही है। या पूजा के उपकरण (पुष्प आदि) लेकर उनसे मिलने को जाती हुई इस छवि द्वारा दर्शकों का मन हर रही है। शब्दार्थ—उपचार=विधान, धर्मानुष्ठान, पूजन के अंग या विधान जो प्रधानतः १६ माने गये हैं। जैसे आवाहन, आसन, अर्घपाद्य, आचमन मधुपर्क, स्नान, वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गंध (चन्दन) पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, परिक्रमा, वन्दना। यही षोड़शोपचार हैं।

(३) या फिर इन कमलों को अपने प्रिय के चरणों का उपमान समझकर प्रेम वश इन्हें अपने हृदय से लगाये हुये हैं। या (कमलों के ऊपर घिर रहे) भ्रमरों का छलकर अनेक मुखों द्वारा उनकी प्रार्थना कर रही है। या ये कमल नहीं है बल्कि ब्रजांगनाओं के मुख कमलों की आभा झलक रही है। या ब्रजवासी कृष्ण के चरणों का स्पर्श सुख पाने के लिये अनेक कमला (लक्ष्मी) यहां ब्रज में आई हुई हैं। या गोपियों को कृष्ण के प्रति जो प्रेम और उस प्रेमानुभूति के फल स्वरूप

उनके शरीर में जिन सात्विक विकारों का उदय होता था वह प्रेम और वे सात्विक अनुभव कमल (लाल) और कुमुदिनियों (श्वेत) के रूप में यहा ब्रज भूमि में बिखरे हुये है। या इसे लक्ष्मी का निवास मानकर सौ सौ हाथों से अपने पानी में (उन्हें) संग्रह कर रही हैं। टिप्पणीः—अनुराग का रंग लाल माना जाता है। 'सात्विक' से सात्विक अनुभवों का अभिप्राय है। अनुभव रस के चार योजकों में अन्तिम है। सात्विक अनुभव नैसर्गिक होते हैं, यथा स्तंभ, रोमांच आदि। सत्व का रग श्वेत होता है।

(४) उन पर पूर्णिमा की रात्रि को जिस काल चन्द्रमा का शुभ्र प्रकाश गिरता है, तब जल से मिलकर आकाश से पृथ्वी तक एक निर्मल वितान का विस्तार कर देता है। उस समय जिस प्रभा का जन्म होता है वह दर्पण की भांति झलझलाती है उस सौन्दर्य को देख शरीर, चित्त और आंखें सभी तृप्त होते हैं। यमुना की तत्कालीन शोभा का वर्णन कौन कवि कर सकता है। पृथ्वी और आकाश उस समय मिले हुये दिखते हैं सर्वत्र प्रकाश रहता है यमुना तट और आकाश की उस समय समान शोभा होती है।

(५) कहीं जल में चन्द्रमा का चमकता हुआ प्रतिविम्ब प्रतिफलित होता हैं। चंचल लहर उस सुन्दर प्रतिविम्ब को लेकर नाचती है। चन्द्र हरि के दर्शन की इच्छा से जल में रह रहा हो ऐसा प्रतीत होता है या ऐसा दिखता है मानों हाथों में लहरों का दर्पण लिये हो। या रासक्रीड़ा में अनेक सखियों के संग नाचते हुए कृष्ण के मुकुट की आभा जल मे दिख रही हो या जल के हृदय में कृष्ण की मूर्ति हो और यह उसका प्रतिबिंब दिख रहा हो।

(६) कभी एक ही बार सौ सौ चन्द्र दिखते हैं; कभी दिखते हैं और कभी छिप कर दूर भागते हैं। हवा की चन्चलता के कारण च द्रमा के पानी में अनेक बिम्ब हो जाते हैं। मानो चन्द्रमा प्रेम मग्न हो यमुना के जल में क्रीड़ा कर रहा हो, या लहरों की डोरी के सहारे झूला झूल रहा हो। या कोई छोटी पतंग आकाश में यहां वहां दौड़ती हुई दिखती हो, या कोई ब्रजबाला स्नान करती हुई पानी में उतर रही हो।

(७) चन्द्र का प्रगट होना और छिपना कैसा है—मानों दोनों ही पक्ष यमुना के जल में दृश्य और अदृश्य हो रहे हों। या तारों को छलने के लिये शशि पूर्णकलाओ से प्रगट होकर पूरा छिप भी जाता है। या कि जमुना जितनी लहरें उत्पन्न करती है, चन्द्रमा उतने ही रूप रख उन्हें भेंटने के लिये आगे बढ़ता है। या अनेक चांदी सी धवल चकवी चल रही हैं, या जल से फुहार उठ रही है या चन्द्रमा रूपी मल्ल अनेक प्रकार उठकर और बैठ कर कसरत कर रहा है पच्छू (पक्ष)=दल। प्रतच्छ (प्रत्यक्ष)=दृष्टि गोचर होना, सामने होना।

(८) पारावत=परेवा। मज्जत=पानी में मग्न होना, नहाना। जलकुक्कुट=पनडुब्बी। तट सोभा जियधरत=तीर की सुन्दर शोभा सब को भाती है।

(९) पिय····हरसि—पुलिन पर बिछी हुई चमकती सिकता राशि को देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रिय के आगमन के उपलक्ष्य में उनका स्वागत करने के लिये पांवड़े बिछाये गये हों, या रत्नो को पीसकर चूर्ण को तीर पर बिखरा दिया गया है। या यमुना के श्याम (काला)–ससिल रूपी केश भार का स्पर्श करती हुई यह (उनमें) भरी हुई मोतियो की सुन्दर मांग है। या ब्रज को निवास योग्य मानकर प्रसन्न होता हुआ यह तट पर सत्व गुण छाया हुआ है।

तृतीय भाग

पञ्चवटी में लक्ष्मण

श्री मैथिली शरण जी गुप्त द्वारा लिखित "पंचवटी" में से उपरोक्त कविता ली गई है। 'पंचवटी' के इस प्रथमांश में गुप्त जी ने लक्ष्मण के मनोगत विचारों का एक अनूठा चित्र खींचा है। श्री रामचन्द्र जी इस समय चित्रकूट छोड़कर पंचवटी गोदावरी तट में आ चुके थे। प्रस्तुत अंश में रात्रि का वर्णन है जबकि लक्ष्मण जी अपनी कुटी के सामने 'प्रहरी' को बैठे हैं।

पृष्ठ १०१ (१) शब्दार्थ—चारु=सुन्दर। अवनि=पृथ्वी अम्बर तल=आकाश के नीचे। तृणों=घास की नोकें। झीम रहे=वायु वेग में हिल रहे हैं।

भावार्थ—[गुप्त जी ने विषय प्रवेश प्रकृति वर्णन से किया है।] सुन्दर चन्द्रमा की चांचल किरणें जल (गोदावरी नदी) एवं स्थल पर (जहां पर श्री रामचन्द्र जी की कुटी बनी हुई है, वह वन।) पर बिखरी हुई है मानो वे किसी क्रीड़ा में निमग्न हैं। आकास एवं पृथ्वी इस छोर से उस छोर तक चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश से प्रकाशित है। चारों ओर आनन्द सा दृष्टि गोचर होता है। पृथ्वी भी हर्ष-उन घास की नोकों को हिलाकर मानो प्रकट कर रही है। वायु धीमी धीमी वह रही हैं इसके प्रवाह में वृक्ष भी हिल रहे हैं।

(२) शब्दार्थ—पर्ण कुटीर=पत्तों से बनाई गई कुटी। निर्भीक मना=शांत मन वाले भयहीन। धनुर्धर=धनुष धारी। कुसुमायुध=पुष्पों के बाण वाले अर्थात कामदेव।

भावार्थ—पांच वृक्षों की छाया में पत्तों से सुन्दर कुटी बनाकर उसके सामने की एक स्वच्छ शिला पर यह कौन

धनुष धारी विराज मान है ? इस निर्जन एवं घनघोर वन में लगभग अर्ध रात्रि के समय इस तरह से बैठने से यही प्रतीत होता है कि अवश्य ही यह धनुष धारी वीर, निडर, एवं धीर है। इस समय सारा ससार निद्रा में मग्न है फिर भी यह कौन व्यक्ति जाग रहा है। ऐसा दिखाई पड़ता है कि स्वयं कामदेव (भोगी) आज यहां पर योगी सा बना बैठा है।

पृष्ट १०३ (३) विपिन=वन। विराग=वैराग्य। प्रहरी=पहरेदार। रत=संलग्न।

[पिछले पद्यांश में कामदेव का संकेत था। लक्ष्मण जी की अवस्था एवं रूप देख कर यही-कहा जा सकता है कि यह व्यक्ति महलों में भोग विलास के लिये उपयुक्त है। वह आज इस वन में क्यों योगी सा बना बैठा है ?]

भावार्थ—ऐसा कौन सा व्रत है जिसकी साधना में यह वीर अभी तक जागरण कर रहा है। राज्य का भोग करने के उपयुक्त यह व्यक्ति क्यों आज वन में सारे संसार के अनुराग को त्याग कर बैठा है ? जिस कुटी का यह पहरेदार है उसमें ऐसा कौन सा अमूल्य धन है जिसकी रक्षा के लिये इस तरह रात्रि में धनुष बाण से सुसज्जित होकर बैठना आवश्यक है ? किसकी रक्षा में इसका शरीर एवं मन संलग्न है ?

(४) शब्दार्थ—मर्त्यलोक मालिन्य=पृथ्वी। (मृत्युलोक जहां पर सभी प्राणी नश्वर हैं।) पृथ्वी मनुष्यों की मलिनता अपवित्रता। मेटने=मिटाने। तीन लोक=आकाश, पृथ्वी. एवं पाताल को शास्त्रों में त्रिलोक माना गया है। आकाश में देवताओं, पृथ्वी में नश्वर प्राणियों का एवं पाताल में निम्न प्राणियों का जैसे दानव आदि का वास माना गया है। विजन=निर्जन। निशाचरी=राक्षसी। माया=उसका प्रभाव।

भावार्थ—पद्य २ और ३ में कवि ने प्रश्न किया था कि किस धन की रक्षा में यह वीर इस कुटी का प्रहरी बना है। इस पद्य मे उसके उत्तर का संकेत है।

इस पृथ्वी के मनुष्यों की मलिनता को दूर कर अर्थात् पवित्रता का एक आदर्श सामने रख कर सीता जी अपने पति के साथ इस वन में आईं। इस अनूठे आदर्श के कारण वे तीनो लोकों में लक्ष्मी तुल्य हैं अर्थात् उसकी एक अमूल्य निधि हैं। वे वीर वंश की लाज हैं फिर उस कुटी का प्रहरी उनकी रक्षा के लिये क्यों न एक वीर हो? निर्जन स्थान है और अभी काफी रात बाकी है उस पर भी रात्रि में राक्षस आदि का भी भय है; उनकी माया के कारण यह आवश्यक है कि कोई पहरेदार हो।

(५) शब्दार्थ—मोदमयी = आनन्दमय।

भावार्थ—(इस पद्य में कवि ने एक मनोवैज्ञानिक सत्य चित्रित किया है।) यदि कोई व्यक्ति पास में न हो तो मनुष्य के मन में कई विचार आते हैं। उसका मन शांत नही रहता। मनोगत विचारों को वह स्वतः के प्रश्नोत्तरों द्वारा सुलझाता जाता है। वह स्वयं अपनी सुनता है और आप ही अकेला बोलता जाता है। [अकेले में यदि कोई व्यक्ति बात करे तो वह सुनने एवं बोलने दोनो के कार्य करता है। जो कुछ वह बोलता है उसी को वह सुन भी सकता है।] इसी सिद्धान्त के अनुसार लक्ष्मण जी भी धैर्यपूर्वक, आनन्दमयी दृष्टि यहां वहां डालकर मन ही मन नई नई बातें कर रहे हैं।

नोटः—इसके पश्चात् सभी पद्यों में लक्ष्मण जी का मानसिक वार्तालाप उद्धृत किया गया है।

पृष्ठ १०३ (६) शब्दार्थ—निस्तब्ध = शांत। सुमन्द = धीमी चाल से। गंध वह = मलय पवन, वायु। निरानन्द =

आनन्दहीन। नियति नटी = भाग्य रूपी नटी। काय कलाप = कार्यों का समूह।

यहां पर लक्ष्मण जी के शांत चरित्र का एक उदाहरण है। अकेले रात्रि में बैठने पर भी उनके हृदय में कोई द्वन्द नहीं चल रहा है। इस अवस्था में प्रकृति के शांत वातावरण के ही बारे में वे सोच रहे है।

भावार्थ—इस समय कितनी मनोहर एवं स्वच्छ चांदनी छिटकी हुई है; यह रात्रि कितनी शांत मालूम पड़ती है। चारों ओर मन्द गति से वायु बह रही है; ऐसा मालूम पड़ता है कि चारों दिशाओं में आनन्द का साम्राज्य है। प्रकृति में शांत वातावरण होने पर भी भाग्य रूपी नटी अपना क्रीड़ा में मग्न है। भाग्य का कार्य समूह निरन्तर ही चला करता है, परन्तु वह भी इस समय कितने शान्त और चुप चाप भाव से चल रहा है।

[रात्रि में जो स्वप्न दिखते हैं उनसे होने के कार्यों का पता चल जाता है और उसी से भाग्य का निर्णय हुआ करता है। इस तरह से भाग्य लीला रात्रि में भी शांत रूप सो चला करती है।

(७) शब्दार्थ—वसुन्धरा = पृथ्वी। विरामदायनी = विश्राम देने वाली।

भावार्थ—रात्रि के समय सबके सो जाने पर पृथ्वी पर मोती के समान तारे बिखर जाते हैं। तारे सूर्योदय होने पर लुप्त हो जाते हैं, मानो सूर्य ही उन्हें अपने पास बटोर कर एकत्रित कर लेता हो। शाम होने पर वह इन तारों को शांति देने वाली सन्ध्या को दे देता है जिससे उसका श्यामवर्ण अपूर्व शोभा पूर्ण हो जाता है। अर्थात तारों के ही कारण रात्रि की सुन्दरता बढ़ जाती है।

(८) शब्दार्थ—आर्त्त अचेत=बहुत अधिक दुःख के कारण मूर्छित हो जाना। अवधि=म्याद। तात=पिता, दशरथ।

भावार्थ—अयोध्या पुरी को छोड़े हुये तेरह वर्ष पूरे हो गये हैं किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह घटना कल ही हुई हो। हमारे वन के आते समय पिता दशरथ अत्यन्त दुःख के कारण मूर्छित हो गये थे यह बात हमें अभी भी ताजी ही मालूम होती है। पर अब हमारे वन मे रहने का समय प्रातः पूर्ण ही हो चला है पर मुझे तो यहां पर ही अपने सेवा कार्य मे ही बहुत आनन्द मिलता है। इससे बढ़कर मुझे और क्या वस्तु चाहिये ?

(६) शब्दार्थ—आर्य=पुराने समय का अपने से बड़ों के लिये व्यवहार मे लाया जाने वाला शब्द। यहां पर राम चन्द्रजी के लिये आया है। प्रजार्थ=प्रजा के हित के लिये। व्यस्त=काम में मग्न रहना।

भावार्थ—प्रजा की भलाई के लिये श्री राम राज्य प्रबन्ध अवश्य ही सँभालेंगे और कार्य में मग्न रहने के कारण विवश होकर हम लोगो का भी ध्यान कम रख सकेंगे। लोक कल्याण की दृष्टि से हम को भी इस बात का दुःख नहीं होगा किन्तु न जाने यह संसारी मनुष्य अपना हित स्वयं ही क्यों नहीं समझता ? उसे किसी दूसरे अधिकारी की आवश्यकता पड़ती है।

(१०) शब्दार्थ—मँझली माँ=कैकेयी। निर्वासित= निकाल कर।

भावार्थ—कैकेयी ने रामचन्द्र को राज्य से बाहर निकाल देने में यह लाभ सोचा था कि भरत के राजा होने पर मैं ही राजमाता कहलाऊँगी और मेरे हाथ में पर्याप्त शक्ति रह सकेगी। किन्तु भरत के महान त्याग ने उनकी यह इच्छा न

पूरी होने दी और बाद में उसे स्वयं ही पश्चाताप हुआ। चित्रकूट में अयोध्या वासियों के साथ कैकेयी भी आई थी। किन्तु वह ग्लानि के कारण बहुत ही दुःखित और लज्जित थी। उसकी दशा देख मानो करुणा भी पसीज जाती थी। वहां के सभी मनुष्य उसे देखते थे किन्तु वह लज्जा के कारण किसी की ओर मुंह उठाकर देख भी नहीं सकती थी।

(११) शब्दार्थ—राज मातृत्व=राज माता होने की इच्छा। विश्वानुकूल=संसार के अनुकूल अर्थात् सुविधा पूर्वक।

भावार्थ—कैकेयी को राज माता का पद नहीं मिल सका क्योंकि भरत जी ने सब कुछ परित्याग कर दिया। वास्तव मे भरत के बड़े भाग्य को बड़े बड़े राजा भी नहीं प्राप्त कर सकते क्योंकि राजाओं को हमेशा तृष्णा बनी ही रहती है। मूर्ख लोगों को सांसारिक वस्तुओ मे ही महत्व दिखता है यही कारण है कि कैकेयी ने राज्य प्राप्ति के लिये महान अनर्थ कर डाले। परन्तु हम तो अब यहां वन में ही सुविधा और सन्तोप पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे है।

(१२) भावार्थ—यदि राज्य प्राप्त करना ही मनुष्य के जीवन का एक मात्र उद्देश्य होता तो हमारे पूर्व पुरुष बड़े बड़े राज्यों को छोड़ कर वन क्यो चले जाते। विवेकी लोग तो त्याग में ही परम आनन्द अनुभव करते हैं। हां, यदि परिवर्तन को ही उन्नति समझ ली जावे तो अवश्य ही हम उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते जाते हैं, किन्तु यह कथन सर्वथा असत्य है और मुझे तो अपने पूर्व पुरुषों के सीधे और सरल भाव ही अधिक प्रिय लगते हैं।

(१३) शब्दार्थ—बनचारी=जंगल के पशु। पुर=नगर। स्वयमपि=स्वयं ही। स्वच्छन्द=स्वतन्त्र।

भावार्थ—श्री रामचन्द्रजी जहां भी रहते हैं मानो वे राज्य ही किया करते हैं। अर्थात् वहां सभी प्रकार की शांति और सुविधा रहती है। उनके इस वन के राज्य मे वन-पशु भी स्वतन्त्र होकर घूमते फिरते हैं। जिन पशु पक्षियों को हम नगरो में बड़े ही प्रयत्न पूर्वक पिंजड़ों में बन्द करके रखते हैं, वे ही पक्षी, पशु आदि यहां पर भाभी सीता से स्वयं ही आनन्द पूर्वक हिल गये हैं और उनके साथ खेलते रहते हैं।

(१४) शब्दार्थ—पतित=नीच। पशुता का आरोप= पशु कहना। निसर्ग=प्राकृतिक। सुरत्व=देवत्व। जननी= माता।

भावार्थ=हम नीच मनुष्यों को प्रायः पशु कह दिया करते हैं। किन्तु पशु भी अपने स्वाभाविक गुणों का कभी भी परित्याग नहीं करते। यद्यपि मनुष्य देवताओ के समान बनने मे सर्वथा समर्थ है, किन्तु मनुष्य जाति मे ही यह महान् दोष है कि अवनति होने पर वह अपनी मनुष्यता भी छोड़ बैठता है इसलिये मैं ऐसे नीच मनुष्य को पशु शब्द से सम्बोधित किया जाना कदापि उचित नहीं समझता।

(१५) पञ्चवटी की सघन छांह मे अनेक प्रकार के पशु पक्षी दोपहर में आ जाया करते हैं और भाभी सीता उन्हे खाने को दिया करती हैं। जिस प्रकार सुन्दर और चन्चल बालक मिलकर अपनी माता को तंग किया करते हैं उसी प्रकार वे पशु पक्षी भी भाभी को तंग करते है, उनके साथ खेलते हैं और उन्हें प्रसन्न किये रहते हैं।

(१६) यहां का प्राकृतिक वातावरण भी बड़ा ही शोभा युक्त है। रात्रि के इस समय में भी गोदावरी नदी के तट पर लहरों की मधुर ध्वनि हो रही है मानो वह ताल दे रहा हो।

गोदावरी का चन्चल जल कल कल आवाज़ करता हुआ मानो तान भर रहा है। अभी भी वृक्षों के पत्त हिल डुल कर मानो नृत्य कर रहे हैं और प्रेम में भरे हुए फूल अपनी सुगन्ध फैला रहे हैं। चन्द्रमा और तारा गण भी यहां के वातावरण से प्रभावित होकर लालच में भर कर आनन्दित हो रहे हैं।

(१७) शब्दार्थ—वैतालिक=प्रशंसा गीत गाने वाले, चारण या भाट। विहंग=पक्षी। संप्रति=इस समय। ध्यान लग्न=चिन्ता में मग्न। कवि कुल तुल्य=कवियों के समान। नर्तक=नाचने वाला। केकी=मोर।

भावार्थ—भाभी की प्रशंसा करने वाले पक्षी रूपी भाट इस समय विचार में डूबे हुये हैं। कवियों के ही समान वे किसी नये गीत बनाने में मग्न हो रहे हैं। केवल कभी कभी मोर ही चिल्ला पड़ता है जो मानो कहता है कि मैं नाचने के लिये तैयार हूँ; देखें गीत गाने में कल कौन यश भागी बनता है।

(१८) शब्दार्थ—तत्व ज्ञान=सत्य का अनुभव अर्थात् परमात्मा का सच्चा ज्ञान। अनुपम=अद्वितीय, सुन्दर। आख्यान=कथाएँ। यत्र तत्र=यहां वहां।

भावार्थः—यहां पर हमें परमात्मा का सच्चा स्वरूप समझने वाले मुनियों का सत्सङ्ग प्राप्त होता है। और उनके द्वारा हमें प्रतिदिन नये और अद्वितीय कथानक सुनने मिला करते हैं। ये महागण तपस्या ही के कारण उच्च पद प्राप्त करते हैं। वास्तव में यह जीवन रूपी फूल जितनी ही अधिक आपत्ति रूपी कांटों में खिलेगा उसकी गौरव रूपी गंध उतनी ही अधिक सब दिशाओं में फैल सकेगी। अर्थात कष्ट साधन और तप द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है।

(१६) शब्दार्थः—सिद्धांत-वाक्य=सत्य तत्त्व के निरुपण करने वाले वाक्य। शुक-सारी=तोता मैना। विपिन= वन। मृग=हिरण।

भावार्थः—यहाँ पर आश्रम में पले हुए तोता मैना भी विचारपूर्ण वाक्य कहा करते हैं। मुनि कन्यायें बड़े ही पुण्य और पराक्रम से भरे हुए कीर्ति गान गाया करती हैं। क्या ही आश्चर्य है कि श्री राम के इस वन के राज्य में सभी का जीवन सुख और शांति पूर्ण है। सिंह और हिरण भी एक ही स्थान पर पानी पिया करते हैं। सभी अपने बैर भाव को छोड़ कर प्रेम पूर्वक रहते हैं।

(२०) शब्दार्थः निषाद-शबरों=जंगल में रहने वाली नीच जातियां। कानन=जंगल। आनन=मुख।

भावार्थः—श्रीराम जंगल में रहने वाले नीच मनुष्यों को भी प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं। इन मनुष्यो के मुंह से भी बड़े ही सीधे सादे शब्द निकला करते हैं। समाज इनको नीच कहता है किंतु वास्तव में ये भी तो प्राणी ही हैं। उन्हें निम्न या हेय दृष्टि से क्यों देखा जावे! ये भी और लोगों के ही समान मन और भाव वाले हैं। हाँ ये अपने प्रेम पूर्ण भावों को अपनी वाणी द्वारा कहने की सामर्थ्य नहीं रखते किन्तु इतनी सी कमजोरी के कारण हमे उनको ठुकराना नहीं चाहिये।

(२१) शब्दार्थः—व्यंजन=विविध प्रकार के स्वादिष्ट भोजन। मधु=शहद। कंद=जमीन से निकलने वाले खाने योग्य पदार्थ। मूल=जड़ें। मनः प्रसाद=मन प्रसन्नता अथवा सन्तोष। कुटीर=झोपड़ी। प्रासाद=महल। आह्लाद=हर्ष। विपुल=भारी। विषाद=दुःख।

भावार्थः—हमको इस वन में विविध पकान्न भोजनों की आवश्यकता नहीं पड़ती। निर्मल जल, शहद और अन्य जंगल

के खाने योग्य फल वगैरह ही हमारे भोजन की सामग्री बन जाते हैं। वास्तव में सुख तो मन की ही वस्तु है। बाहरी वस्तुओं में सुख अथवा दुख देने की शक्ति नहीं है। यदि मन प्रसन्न और और संतुष्ट है तो कुटी और महलों में रहना एक समान ही मालूम पड़ेगा। भाभी सीता अपने मन की प्रसन्नता के कारण इस जंगल में भी हर्ष युक्त रहती हैं और कैकयी अयोध्या में वैभव के बीच रहकर भी अत्यन्त दुःखी ही रहती हैं क्योंकि उनका मन ही शोक और असन्तोष से भरा हुआ है।

(२२) शब्दार्थ—निराना = खेतों में से घास इत्यादि अलग करना। स्वावलम्ब = दूसरे के आश्रित न रहना। कोष = खजाना।

भावार्थ—अपने लगाये हुए पौधों में भाभी स्वय ही जल भर कर सिंचाई करती हैं। वे स्वयं ही अपनी खेती को खुरपी लेकर निराया करती हैं। अपने हाथ से ही काम करने पर उन्हें बड़ा ही गौरव, सुख और सन्तोष प्रतीत होता है। वास्तव में कुबेर का विशाल खजाना भी स्वावलम्ब की एक झलक मात्र पर न्योछावर कर देने योग्य है। अर्थात पराश्रित न रहने के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

(२३) शब्दार्थ—निःस्पृहता = वैराग्य। भुवन = ससार। कृत्रिमता = बनावट। अधिष्ठात्री = आधार या स्वामिनी। विकृति = विकार, नाश।

भावार्थ—संसार के प्रति यहां के निवासियों के हृदय में प्रबल वैराग्य रहता है। महर्षि अत्रि और उनकी पत्नी अनुसूया के समान गृह कुशलता कहीं नहीं मिल सकती। यह वन की दुनियाँ तो एक निराली ही है। यहां पर बनावटी पन तो थोड़ा भी नहीं है। यहां पर निसर्ग कार्य ही व्यवस्थित ढंग से हुआ

करते हैं किसी प्रकार के विकार अथवा विनाश की तो संभावना ही नहीं रहती।

शब्दार्थ—स्वजन = सम्बन्धी। परोक्ष = सामने न रहना। क्षेम = कुशलता। प्रत्यक्ष भाव = सामने रहना।

भावार्थ—इस जंगल के वास में दुख की बात केवल यह है कि हमको यहां पर अपने संबंधियों की चिन्ता होती है और वहां पर वे हमारे दुख से दुखी होंगे। प्रेम और सब कुछ सह सकता है किन्तु अपने प्रेमी का सामने न रहना प्रेम में कभी भी सहनीय नहीं होता प्रेमी की उपस्थिति से ही प्रेम की रक्षा भली प्रकार होती रहती है। अर्थात कष्ट नही होता।

कैदी और कोकिला

(कविवर माखनलालजी चतुर्वेदी 'भारतीय आत्मा' ने प्रस्तुत कविता कारागृह में रहकर लिखी थी। सत्याग्रह संग्राम मे उन्होने भाग लिया था और वे ब्रिटिश साम्राज्य के कैदी बने थे। कोयल को सम्बोधितकर उन्होंने अपने मनोभावों का सुन्दर और प्रभावोत्पादक चित्रण किया है।)

प्रथम दस पंक्तियां:—क्या गाती हो ... क्युं आली ?

शब्दार्थ—बटमारों = नीच कृत्य करने वाले। तम प्रभाव = अज्ञान। हिमकर = चन्द्रमा। कालिमा मयी = काले रंग की। आली = सखी।

भावार्थ—अरी कोयल कुछ बतलाओ तो कि तुम्हारे आन्तरिक भाव क्या हैं ? क्या तुम किसी का सन्देश सुनाने में प्रयत्नशील रहती हो ? चन्द्रमा के अस्त हो जाने से रात्रि और

भी काली हो गई है। इस समय जेल की ऊंची चहार दीवारी में डाकू, चोर इत्यादि अपराधियों का निवास है। उनके जीने योग्य पर्याप्त भोजन भी नहीं मिलता। वे मर भी नहीं सकते और उन्हें तड़प तड़पकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है। सदैव ही उनपर पहरा लगा रहता है। इस प्रकार के कृत्य को सुव्यवस्थित शासन तो कह नहीं सकते, यह तो वास्तव में अज्ञान का ही परिणाम है। बता सखि, ऐसी घोर रात्रि में तू क्यों जाग उठी है?

द्वितीय दस पंक्तियां—क्यों हूक पड़ी..........
..........गाने आई आली ?

शब्दार्थ—मृदुल=सुकुमार । निश्वास=बाहर फेंकी जाने वाली सांस। उभय=दोनो।

भावार्थ—भला तू क्यों चिल्ला पड़ी? क्या तुझे कुछ पीड़ा है या तुझ पर किसी का भार है। क्या तेरी कुछ सम्पत्ति नष्ट हो गई है? ऐसे किस ऐश्वर्य की तू रक्षा किया करती हो बतलाओ तो सही?

इस समय कैदियों के श्वास की घबराहट सुन पड़ रही है। उनके निश्वासों द्वारा मानो उनकी दिन की पीड़ा ही परिलक्षित हो रही है। जेल के लोहे के फाटकों की और पहरेदारों की अथवा उनके जूतों की आवाज सुनाई देती है। रात्रि को कैदियों की गिनती रखने वालों का स्वर भी स्पष्ट सुन पड़ता है। कारागृह की करुण स्थिति का ध्यान आने से मेरे दोनों नेत्रों में आंसू भर गये हैं। इस समय तुम अपनी अटपटी किन्तु मधुर वाणी में भला क्यों गा रही हो?

तृतीय दस पंक्तियां—क्या हुई बावली..........
..........न भाई आली ?

शब्दार्थ—बावली=पागल। दावानल=जंगल में लगने वाली आग। तरलामृत=द्रव रूप में अमृत। विटप=वृक्ष। वल्लरी=लता। नभके दीप=तारागण।

भावार्थ—कोयल! क्या तू पागल हो गई है जो आधी रात्रि के समय मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपने हृदय की मधुरता से जेल के वातावरण को ही सुखमय बना देने की चेष्टा कर रही हो। यहां के पीड़ित हृदयों को तुम अपनी वाणी द्वारा अपूर्व आनन्द कर रही हो। अथवा वायु वृक्ष और सघन लताओं को पार करने वाली तुम्हारी कूक जेल की दीवारों को भी पार करने की शक्ति दिखाने मे सचेष्ट है। तुम मेरे संतप्त हृदय को सान्त्वना देने आई हो अथवा तुमने इन ताराओं को ही अस्तित्वहीन बना देने का संकल्प कर लिया है। मुझे उनसे द्वेष क्यो है? वे तो अंधकार को कम करके जगत् का पहरा ही दिया करते हैं। मालूम होता है मुझे उनका प्रकाश रुचिकर नहीं लगता।

चतुर्थ आठ पंक्तियां—तुम रवि किरणों से ....

..............सजीला देखा।

शब्दार्थ—दूबों के आंसू=ओस कण। मोती=जल विन्ध्या=विन्ध्याचल पर्वत। व्रतधारी=साधना करने वाले साधु गण।

भावार्थ—तुम सूर्य की प्रातःकालीन किरणो से तू अपना मनोविनोद करती है और मनुष्यो की नींद दूर भगा देती है। आज तुम आधी रात्रि से ही जगत को जगाना चाहती हो? दूब पर पड़े हुए ओस कणो को सूर्य किरणें विलीन कर देती हैं। उन सूर्य किरणो पर, अपने निर्मल जल को प्रसारित करते हुए विन्ध्याचल के झरनों पर, तप करने वाले महात्माओं पर और सारे विश्व को कम्पित कर देने वाली उद्धत वायु पर भी तेरे

मधुर गीतों का अवश्य ही अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यह मैंने बहुत ही अच्छी तरह जान लिया है।

टिप्पणी—वास्तव मे कवि स्वयं ही कोयल की वाणी से बहुत अधिक प्रभावित हुआ है, और वह प्रकृति के अनेक स्थलों में कोयल के प्रभाव को देखने की चेष्टा कर रहा है।

पञ्चम दस पंक्तियां—अब सर्वनाश··············
·······ढा रही आली ?

भावार्थ—अरी कोयल, तू अपने प्रभाव को भले ही न जानती हो। किन्तु तेरी यह वाणी तो संसार को व्यथित किये दे रही है। इस घोर रात्रि मे भला तुम अपनी मीठी आवाज क्यो सुना रही हो ? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे कैदियों की हथकड़ियां नहीं सुहाती, किन्तु ये तो अग्रेजी राज्य के दिये हुए आभूषण है। यदि तुझे गिट्टी पर चिढ़ है तो यह भी तेरी भारी भूल है। क्योंकि कैदियों की अंगुलियों द्वारा मिट्टी फोड़े जाने के समय वे गीत गाते जाते हैं और वे गीत उन गिट्टियो पर भी अंकित हो जाते हैं। कोल्हू चलने की ध्वनि से कोल्हू चलाने वाले कैदी के जीवन की समरसता हो गई है। यदि मोट द्वारा कुएं से पानी निकाला जाना मुझे पसंद नहीं है तो तू यह समझ ले कि वास्तव मे ब्रिटिश साम्राज्य का गर्व अपहरण किया जा रहा है। सम्भवतः जेल की भीषण यातनाओ से दिन मे मेरा हृदय करुणा से न भर जाय, इसलिए तू रात्रि में ही मुझे रुलाने के लिए आ पहुँची है।

षष्टम दस पक्तियां—इस शान्त समय······ऐ आली !

शब्दार्थ—विद्रोह बीज=अंग्रेजी राज्य के प्रति विरोधी भावनाएँ। काल कोठरी=कैदी की कोठरी। लोह शृंखला=हथकड़ी। हुंकृति=हुंकार। व्याली=सर्पिणी।

भावार्थ—रात्रि के इस शांतिपूर्ण वातावरण में अंधेरे को भेद कर भाला तुम्हारी यह करुणा कूक क्यो सुनाई दे रही है ? तेरी यह वाणी अनजाने ही सुनने वालो के हृदय में अंग्रेजी राज्य के प्रति विरोधी भावो की जागृति कर देती है। इस समय मुझे चारो ओर के वातावरण में कालिमा का ही साम्राज्य दिख पड़ रहा है तू काले रग की है, रात्रि भी काली है, शासको की नीति भी काली अर्थात् अन्याय पूर्ण है नदी की लहरें भी काले रग की हैं। हृदय में उठने वाले भाव भी काले हैं अर्थात दूषित हैं। मेरी यह कोठरी भी अधकार पूर्ण होने से काली ही है। सिर की टोपी, कम्बल और हथकड़ियो का रग भी काला ही है। पहरेदारों की आवाजें काली सर्पिणी की फुफकार के समान मालूम होती है और वे कैदियो को गालियां देते रहते है।

टिप्पणी—कवि के हृदय में जेल के वातावरण से अत्यधिक घृणा और असन्तोष हो उठा है। उक्त पंक्तियो में कवि के मनोभावो का अच्छा चित्रण हुआ है।

सप्तम दस पंक्तिया—इस काले ······ ··रणभेरी !

शब्दार्थ—नसीब=प्राप्त होना। नभ=आकाश। सन्चार =जाना आना। गुनाह=अपराध। रणभेरी=उत्साह युक्त वाणी (अन्य स्थानो पर युद्ध का बाजा)

भावार्थ—इस अत्याचार और कष्ट से भरे हुये संसार पर तुम उत्साह पूर्वक प्राण देने को तत्पर हो। अपनी प्रभाव युक्त वाणी को तुम किस प्रकार फैला रही हो ? न तो हरी हरी डालियो पर उछल कूद रही है किन्तु मुझे यह काली कोठरी ही प्राप्त हुई है। तू स्वच्छन्द हो कर आकाश भर मे उड़ फिर सकती है किन्तु मेरा केवल दस फुट के घेरे वाली कोठरी में ही निवास है। तू गीतो द्वारा अपना हर्ष प्रकट कर रही है किन्तु मुझे रोने में भी अपराधी ही बनना पड़ेगा। तुझे अपनी और

मेरी असमान परिस्थिति मालूम है फिर भी तू उत्साह और आनन्द के स्वर में क्यों कूक रही है।

अन्तिम बारह पंक्तियां—इस हुँकृति पर ·······जग-सारा कोकिल बोलो तो ?

शब्दार्थ—कृति = कार्य, रचना। आसव = रस। करुणा गाहक = करुणा चाहने वाले कैदी। रुदन = रोना।

भावार्थ—तेरी इस हुँकार से प्रभावित मेरी रचना सब कुछ कर सकने में समर्थ है। भगवान कृष्ण की बांसुरी के समान मेरी कविता भी किसी में भी जीवन रस भर सकती है। अरे तुम उत्तर तो देती नहीं केवल कू कू रटे जा रही हो। अन्धकार मे अपनी यह मीठी बोली क्यों व्यर्थ सुना रही हो। आकाश भी कमजोरी को ही नष्ट करने मे समर्थ। यही कारण है कि तेरा गाना आकाश में विलीन हो जाता है। अतः तू अपने गीत वन्द कर दे। दया के पात्र कैदी सो रहे हैं और स्वप्न देख रहे हैं उनकी सांसें उनकी बीती बातों को भुलाती जा रही हैं। वे कैदी सींकचे रूपी लोहे के वन्धनों में हैं और मृत प्राय ही है। क्या तुम्हारा यह रोना उनकी सांसों द्वारा उनके भीतर प्रविष्ट हो सकेगा ? क्या प्रातःकाल होने तक तेरी इस वाणी में संसार के वातावरण को बदल देने की शक्ति है ?

अशोक की चिन्ता

प्रसंग—मानव प्रकृति के कवि 'प्रसाद' द्वारा रचित "अशोक की चिन्ता से यह अंश लिया गया है। अशोक ने कलिंग पर विजय पायी है। युद्ध मे भयानक रक्तपात देख कर उसे हिन्सा से जो घृणा हो जाती है। उसी प्रसंग को लेकर

कवि प्रसाद संसार की नश्वरता पर संकेत करते हुये अशोक के हृदय परिवर्तन एवं प्रेम का उपदेश देते हैं।

(१) पृष्ठ १२५—जलता है ········न उठे उमंग ?

शब्दार्थ—जीवन पतंग=जीवन रूपी पतंग। लघु=छोटा। शलभ=पतंगा। पुञ्ज=समूह। तृष्णा=लालसा। अनलशिखा=अग्नि ज्योति; लौ। रक्तिम=खून के रंग का तेज, लाल चमक। यौवन=जवानी। उमंग=इच्छा, लालसा।

अर्थ—यह जीवन रूपी पतंगा जलता है यहां कवि जीवन की अस्थिरता बतलाते हुये कहते हैं कि मानव जीवन एक बहुत ही छोटा क्षण मात्र है। जीवन के ये क्षण कण कण से पतंगों की झुण्ड की तरह हैं। और दूसरी ओर तृष्णा रूपी अग्नि ज्वाला है जो अपना तेज रुपहला रूप दिखा कर जीवन (के क्षणों) को अपनी ओर आकर्षित करती है।

भावार्थ—जिस तरह पतंगों को दीपक की लौ में स्वर्गीय मिलन का भ्रम रहता है और उसी भ्रम के फलस्वरूप वे अपना जीवन खो बैठते हैं उसी तरह मनुष्य सांसारिक वैभव प्राप्त करने के मिथ्या लोभ में फंस कर अपना जीवन स्वाहा कर देते हैं।

(२) पृष्ठ १२५—हे ऊँचा आज ····का अभिमान भंग ?

शब्दार्थ—मगध शिर=मगध का गौरव। पदतल=चरणों के नीचे। विजित=जीता गया, हारा हुआ। दूरागत=दूर से आने वाली। क्रन्दन ध्वनि=रोने की आवाज। अस्थिर=अल्प समय के लिये। अभिमान भंग=विजय का गौरव का नष्ट होना

अर्थ—आज मगध (का मस्तक) गौरव शाली है क्योंकि उसने कलिंग देश को हरा कर अपने हाथ में कर लिया है।

किन्तु युद्ध के भीषण रक्त पात के फलस्वरूप फैली दिल दहला देने वाली करुण चीत्कारों ने उसे व्यग्र कर दिया है।

(३) (पृष्ठ १२५) इन प्यासी ...... आज हुआ कलिंग ?

शब्दार्थः—निर्दयता = दया रहित, दुष्टता। हिंसक = मार काट कर खून वहाने वाले। हुँकारों = भयावनी आवाजों। नत मस्तक हुआ = हार गया। कलिंग = उड़ीसा (प्रांत)। पैनी = तेज, तीव्र।

अर्थः—इन खून पीने वाली तलवारों और तेज धारों, दुष्टतापूर्ण मारकाट और भयानक (राक्षसों) गर्जना का मुकाबला न कर सकने के कारण कलिंग देश आज हार गया।

(४) (पृष्ठ १२६) यह सुख कैसा ...... किरणों का प्रसंग।

शब्दार्थः—शासन = राज्य करना। मानव = मनुष्य। गिरीभार = पर्वत का बोझ। घटाटोप = बादलों का छा जाना। (घटा = वादल, टोप = छा जाना,) वादलों के छा जाने के कारण अन्धकार। रवि—सूर्य। शशि = चन्द्रमा।

अर्थः—यह शासन (सत्ता) का कैसा सुख है ! याने अस्वाभाविक है। शासन तो (प्रेम के बल पर) मनुष्य के हृदय पर होना चाहिए। एक जरा सा तिनका पर्वत के सदृश्य महान (वजनी) वन गया है। किन्तु अत्याचार के ये घोर बादल दो दिन के ही हैं। इसके बाद फिर सूर्य और चन्द्रमा का तेज फैलेगा ही।

भावार्थः—कवि, मरकाट और अत्याचार द्वारा प्राप्त किये गये राजपाट (ऐश्वर्य-वैभव) को तुच्छ बतलाते हुए उपहास भाव से कहता है कि यह शासन का कैसा सुख है। याने यह शासन (राज पाठ) करने का सुख नहीं है। सुख तो हृदय को प्रेम के बल से जीत कर उस पर राज्य करने पर मिलता है। किन्तु कवि को

विश्वास है कि एक इतनी तिनके की तरह तुच्छ (नश्वर) चीज जो पहाड़ की तरह बड़ी बन गई है अधिक समय तक उस तरह बनी नहीं रह सकती। यह अत्याचर और क्रूर शासन थोड़े समय तक ही रहेगा और फिर शांति और सुख का स्थायी प्रकाश फैलेगा।

तात्पर्यः—प्रेम के बल से ही मनुष्यों के हृदय पर विजय पानी चाहिये। हिंसा द्वारा प्राप्त विजय स्थायी नहीं हो सकती।

(५) (पृष्ठ १२६) यह महादम्भ ······पराजय का कुढग।

शब्दार्थः—महादम्भ = घोर मिथ्या अभिमान। दानव = राक्षस। अनग = सुख-भोग की लालसा। आसव = मदिरा, नशा, शराब। भीषण = भयानक। रव = हाहाकार, आवाज। कुढग = बुरा ढग।

अर्थः—घोर मिथ्याभिमान धारण किए हुए इस राक्षस ने सुख-भोग की लालसा में मदमत्त होकर भयंकर हाहाकार मचवा दिया है। जीत और हार के बुरे ढग को छोड़कर, हे मनुष्य, प्राणी मात्र को सुख पहुँचा।

भावार्थ—सुख ऐश्वर्य लिप्सा मे मदमत्त होकर घोर हिन्सा द्वारा राजपाट प्राप्त करने के ढग को जघन्य कार्य बतलाते हुए कवि उपदेश देता है कि हारजीत के ऐसे क्रूर साधनों को त्याग कर प्रेम बल पर मनुष्यों के हृदय पर स्थायी राज्य करो।

(६) संकेत कौन ·······हैं तुरग।

शब्दार्थ—संकेत = इसारा। मुकुटो को = राजाओ के ताज को। जयमाला = विजय उल्लास। सूखी = मुरझायी। नश्वरता = नाशवानता, मृत्यु। तुरग = घोड़ा, आकांक्षा।

अर्थ—राज मुकुटो को भी जो सरलता से ही मार गिराती है वह मृत्यु है जो संकेतों से सावधान कर रही है।

जब मृत्यु का समय आता है तब वियोल्लास मुरझा जाता है और जब नाशवानता अपना सन्देश देती है तब उस समय राज्य वैभव (घोड़े इत्यादि) नहीं कुछ हलचल करता।

भावार्थ—अशोक जगत की नश्वरता का अनुभव कर मृत्यु ऐसी बलशील है कि उसके सामने सारा राज्य वैभव पड़ा रहता है। अतएव यह विजय का उत्सव महत्वहीन है।

(७) वैभव की यह········राग रंग।

शब्दार्थ—मधुशाला=मदिरालय, शराब खाना। हाला=शराब। राग रंग=वैभव विलास।

अर्थ—यह संसार वैभव का मदिरालय है जिसमें पड़कर सभी सांसारिक मानव मदमस्त हो रहे हैं। इस वैभव के नशे में छक कर वह गिरता है तो कभी उठता है। पर इतने पर भी उसके पात्र में मदिरा भरी रहती है अर्थात सावधान नहीं होता। यह वैभव विलास अस्थिर है (क्योंकि मृत्यु सभी को क्रमशः उदर गत करती जाती है)।

भावार्थ—अशोक सोचता है कि यह सारा संसार वैभव सुख में मदमस्त सा हो रहा है। मनुष्य को चोटें भी लगती हैं पर वह नहीं सावधान होता। पर यह राग रंग अत्य कालिक ही है क्योंकि मृत्यु तो निश्चित ही है।

(८) पृष्ठ १२६–१२७—काली काली·······हे तरंग।

शब्दार्थ—अलकों=केश, बाल, जुल्फों। मदनत=नशे में चूर। मणि मुक्ता=धन दौलत। झलकों में=जगमगाहट में। ललकों=लालसाओं। तरंग=(लहर के सदृश) वैभव इच्छा।

अर्थ—काले काले केशों के सौंदर्य में मग्न मदमस्त नेत्रों में, धन दौलत की जगमगाहट एवं सांसारिक सुख प्राप्त करने की लालसाओं में जो एक तरंग (लहर) मात्र दिखाई देती है वह क्षण मात्र के लिये ही रहती है।

भावार्थ - सांसारिक सौन्दर्य और उसमें मस्त तथा रुपया सोना और विषय सुख में जो आनन्द मिलता है वह स्थायी नहीं होता केवल क्षण भर का ही रहता है। अर्थात मनुष्य उस सुख को वास्तविक सुख समझ कर मस्त रहता है। पर वह सुख क्षण भर का है।

(९) पृष्ठ १२७—फिर निर्जन·······न वहां मृदंग?

शब्दार्थ—निर्जन=जनशून्य, सुनसान। नीरव=शान्त चुप। नूपुर=घुंघरू, पैजनिया। श्लथ=गिरी हुई। मधुबाला= मधुर युवा सौन्दर्य।

अर्थ—(मृत्यु के बाद) फिर विजय उल्लास का समारोह स्थल जनशून्य रह जाता है, घुंघरू (राग रंग) की ध्वनि शान्त हो जाती है, विजय माला मुरझा कर गिर जाती है मोहक सौन्दर्य का अन्त हो जाता है। और मदिरा का पात्र (याने वैभव इच्छायें) सूखा और लुढ़क जाता है और सुख वैभव का संगीत बन्द हो जाता है।

भावार्थ—मृत्यु के पहिले मनुष्य भोग विलास में मस्त रहकर राग रंग मचाता है। किन्तु मर जाने पर सब की समाप्ति हो जाती है। सुख वैभव का व्यापार बन्द हो जाता है।

(१०) इस नील विषाद·······मन कुरंग।

शब्दार्थ—नील=नीला। विषाद=दुख निराशा। गगन =आकाश। चपला=बिजली। घन=बादल अन्धकार। मरुमरीचिका=मृग तृष्णा, मरुस्थल के भ्रम के वन में। चंचल= वेगवान। कुरंग=मृग, हरिण।

अर्थ—इस काले आकाश रूपी संसार में फैले दुःख के बादलों में सुख की बिजली कभी कभी ही चमकती है। इस मृग तृष्णा के मरु जंगल में वेगवान मन रूपी मृग उलझा हुआ है।

भावार्थ—सारा संसार दुख से पूर्ण है इसमें सुख उसी प्रकार से आता है। जिस प्रकार बादल में बिजली चमक जाती है और फिर विलीन हो जाती है। यह मनुष्य का मन इसी प्रवन्चना के वन में भटका फिरता है।

(११) आसू कन कन ········ का है निषग।

शब्दार्थ—कनकन=कणकण। सरिता=नदी, धारा। दृगंचल=आंखो की पलकें। सूने=व्यर्थ। काल=मृत्यु। निषंग=तुणीर; चक्र।

अर्थ—आंखो के पलकों से छल छल करते हुये कण कण आंसुओं की धारा (नदी के समान) बह रही है। सभी लोग अपने अपने राग रंग में ही मस्त है। जीवन बिना उचित उपयोग के बीतता जाता है। दूसरी ओर मृत्यु का चक्र निरन्तर रूप से चलता ही रहता है।

भावार्थ—अशोक संसार की पीड़ा का अनुभव कर यह अनुमान करता है कि संसार दुःख के कारण ही रोता है और दूसरी ओर अशोक संसार के राग रंग को देख कर चाहता है कि जीवन का यथा सम्भव सद उपयोग किया जावे क्योंकि मृत्यु के चक्र से कोई नहीं बचता जो कि सदा बिना रुके ही चलता रहता है।

(१२) वेदना विकल ········ कब से कुढंग।

शब्दार्थ—वेदना = दुख। विकल = व्याकुल। चेतना = प्राणी। पीड़ा = दुख। नर्तक = नाच। लय = मिलना। कम्पन = हलचल। अभिनयमय = नाटकीय।

अर्थ—यह मस्त प्राणी समूह दुख से व्याकुल है। जड़ के ऊपर दुख का नाच हो रहा है (जड़ संसार पर दुख का राज्य है। इस पीड़ा और जड़) लय के समय भी हलचल होती है। यह संसार का परिवर्तन नाटकीय है। यह तमाशा बहुत काल से होता आ रहा है।

(१३) करुणा गाथा .... सन्ध्या सुरंग।

शब्दार्थ—करुणा = दुख, दया। वायु = हवा। ऊषा = प्रातःकाल। मधु = मधुर, मीठा। पिङ्गल = राग बिशेष। सुरङ्ग = अच्छा रङ्ग।

अर्थ—(सांसारिक क्रूर वीभत्स दृश्यों को देखकर) दया अपना संदेश दे रही है। वायु मानों बिना मन की ही बह रही है। प्रातःकालीन रश्मि दुखित सी रहती है और शाम को अपना मुख मुरझाया हुआ सा लेकर इस संसार से बिदा होती है। मधुर संगीत शाम के धुंधलके के रूप में उदास हो जाता है। अर्थात सर्वत्र उदासी ही उदासी छायी रहती है।

भावार्थ—अशोक ने प्रकृति की विभिन्न लीलाओं में भी दुख और व्यथा का अनुभव किया है। वह अनुमान करता है कि ऐसे क्रूर अत्याचार और पापी संसार में आता है और क्रूर लीलाओं को देखकर उदास होकर चला जाता है।

(१४) आलोक .... सो जाते विहंग।

शब्दार्थ—आलोक=प्रकाश। किरन=किरण, रश्मि। रेशमी=सुखकारी। दृग=आंख। तम-पट=अंधकार का परदा। कलरव=चहकने की ध्वनि। विहंग=पक्षी।

अर्थ—प्रकाश की किरण आती है और इससे कुछ समय के लिए एक सुख की रेखा आ जाती है। आंख की पुतली कुछ ही देर को नच पाती है। और फिर अन्धकार के परदे में छिप जाती है और चहचहाने के बाद पक्षीगण विश्राम करने लगते हैं।

भावार्थ—कुछ समय के ही लिए सुख होता है और उसी सुख के क्षण में मनुष्य आनन्द विभोर होकर हलचल करने लगता है पर यह सुख अस्थायी नहीं हैं अतः फिर दुख का ही बोलवाला हो जाता है।

(१५) जब पल भर··············सुमन रंग ?

शब्दार्थ—मिलना=जीवन। चिर=दीर्घ। वियोग=बिछुड़ना। चटकीला=चमकदार। सुमन=फूल मनुष्य का मन।

अर्थ—जब यह निश्चित है कि जीवन बहुत थोड़े समय के लिये ही है और इसके बाद हमेशा के लिए इस संसार से बिछुड़ना हैं। एक ही प्रातःकाल में ही फूल खिलता है और फिर वह सूखकर मिट्टी में मिल जाता है। फिर फूल का रङ्ग क्यों इतना चमकदार है। अर्थात क्यों मनुष्य अल्पकाल के लिए ही सुख मनाता है नाना वैभव सुख से चटकदार बनता है।

भावार्थ—मनुष्य जीवन अल्प ही है और उसका अन्त हमेशा के लिए होना निश्चित ही है। उसे केवल एक ही बार उसे यह अवसर मिलता है और उसका वह अनुचित मदमस्त

होकर उपयोग करता है। अर्थात उसे सावधान होकर सन्मार्ग ग्रहण कर जीवन का सदुपयोग करना चाहिए।

(१६) संस्मृति के ······ मधुपान भृंङ्ग।

शब्दार्थ—संसृति=संसार। विक्षत=आहत, घायल। पग=पैर। डगमग=टेढ़ी टाढ़ी। अनुलेप=मरहम, दवा। मृदुदल=पराग या मधुर रस। मग=रास्ता। भृंङ्ग=भौंरा।

अर्थ—संसार के पैर घायल हैं और इसलिये इसकी चाल टेढ़ी और हलती डुलती है। उस घायल पृथ्वी में तू अपने को मरहम की तरह लगादे याने उसको सही रास्ते पर लाने के लिये उपकार कर और इस रास्ते में मधुर रस बरसा दे याने मधुर प्रेम का संचार कर दे। भंवरे मीठा मधु रस पी चुके हैं अर्थात् प्रेम रहित कर चुके हैं।

भावार्थ—संसारक्रूर अत्याचारों और दुःख से पीड़ित है और उसका पथ भ्रमित, गलत है। उसको प्रकाश और सही मार्ग पर लाने के लिये उसकी प्रेम पूर्वक सेवा करो। क्योंकि दुष्ट लोगों ने उसे प्रेमहीन और दुखित बना दिया है।

(१७) भुनती वसुधा ······ जीवन पतंग।

शब्दार्थ—भुनती=जलती, दुखित। वसुधा=पृथ्वी। तपते=गरम। नग=पर्वत। अग जग=संसार। कटक=कांटे सिकता=बालू। तरंग=धारा।

अर्थ—यह (संसार) धरती जल रही है और पर्वत अग्नि के समान गरम हैं। सारा जन समुदाय दुखी और पीड़ित है। कदम कदम पर कांटे मिलते हैं और यह रास्ता जलती हुई बालू

(रेत) का है। ऐसे दुखित संसार में तू दया (शीतलता) की धारा बनकर बह जा। अर्थात् संसार को सुखी बनाने में अपना बलिदान तक कर दे। यह जीवन रूपी पतंग जलता है।

भावार्थ—यह सारा जगत दुख से कराह रहा है और लोग इसकी उष्णता में व्याकुल हैं यहाँ दुख के साज समान पर्याप्त हैं। अतः मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि वह संसार को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करे और इसमें अपना सर्वस्व त्याग कर दे।

टिप्पणी—कवि प्रसाद जी का जीवन अत्यन्त दुखी था और इसी लिये उनने संसार के दुख का अनुभव किया है। यहां तक कि उन्हें संसार में सिवाय दुख और निराशा के और कुछ नहीं दिखता। इसी का प्रतिविम्ब उनकी इस कविता में पड़ता है। वे संसार से विरक्ति बतलाते हैं और यह तर्क देते हैं कि संसार तो नश्वर है अतः यहां के (माया) सुख के जंजालों में न फंस कर मनुष्य को उस संसार का कल्याण प्रेम और अहिंसा के मार्ग से करना चाहिये। वे हिंसा द्वारा प्राप्त विजय को तुच्छ बतलाते हुये अशोक का उदाहरण देते हैं कि उसने युद्ध और भीषण रक्तपात कर कलिंग विजय की है पर उसे शांति और सुख नहीं मिला। शान्ति और सुख केवल अहिंसा और प्रेम में हैं। यही 'प्रसाद' जी का सिद्धान्त है। जो इस कविता में परिलक्षित होता है।

कुछ अशुद्धियाँ और उनका शुद्ध रूप:—

अशुद्ध—शुद्ध

पृष्ठ १२६:—होय—टोय

सब—तब

सुरंग—तुरंग
पृष्ठ १२७:—दुखधन्न—दुखघन
पृष्ठ १२८:—लू—तू

मौन निमन्त्रण

प्रस्तावना—प्रकृति के दृश्यों में तद्गत भावुक कवि को किसी परम रहस्यमयी सत्ता का बोध होता है। प्रकृति के प्रति जो कवियों को सहज आकर्षण होता है, उसका मूल यही है। यह सत्ता स्पष्ट नहीं होती, यह ठीक है किन्तु उसकी प्रतीति बड़ी दुर्वार होती है। कदाचित हमारे भीतर का सत्य भी हमें उसी दिशा में प्रेरित करता है। कविपन्त ने इस कविता में कुछ ऐसे ही दृश्यों का संकलन किया है।

शब्दार्थ—स्तब्ध=शांत। ज्योत्स्ना=चांदनी। चकित =भौंचक, स्तब्ध। विश्व=संसार।

(१) रात्रि में जब शान्त चन्द्रिका भूतल को ढंक देती है और संसार उसकी भव्य सुन्दरता को देख शिशु की भांति विस्मित और विमुग्ध होता है, और जब संसार के पलकों पर अज्ञात स्वप्न क्रीड़ा करते हैं, उसी समय न जाने कौन नक्षत्रों से मुझे चुपचाप बुलाया करता है।

(२) भीम=भयंकर, तपसाकार—अन्धकार से गठित। सघन=निश्छिद्र।

अर्थ—(वर्षा काल में) जब सघन मेघों द्वारा भयकर तिमिरान्ध आकाश गर्जना करता है, जब हवा जोर की आवाज

करती हुई बहती है—आंधी चलती है, और जब वर्षा की धारा वेग पूर्वक गिरती है, उसी समय में न जाने कौन बिजली में अकस्मात् क्षण भर के लिये गोचर होकर चुपचाप संकेत करता है।

(३) यौवन भार=यौवन का बढ़ा हुआ रूप रंग, स्वेच्छ्वास=उच्छ्वास पूर्वक। मधुमास=वसन्त गूंज... मास—वस्तुतः वसन्त का आना प्रकृति की सौन्दर्यता का कारण है, यहां कवि प्रकृति के सौन्दर्य को प्रथम मानता है। वसन्त के गुन्जन से कवि का अभिप्राय तत्कालीन वृक्षों के मर्मर, पक्षियों कूजन आदि की हर्ष पूर्ण ध्वनियो से है।

अर्थ—भू का खिला हुआ रूप रंग देख जब जब लुब्ध वसन्त गुन्जन करता है और इस तरह अपना प्रेम प्रकट करता है, जब फूल अपनी गंध बिखेरते हुये उतने ही सहज भाव से खिल जाते हैं जितने सहजभाव से किसी दुःखी हृदय की कोमल वाणी निकलती है, तब न जाने कौन चुपचाप सुगन्ध के छल से मुझे अपना सन्देश भेजा करता है!

(४) जल शिखर=चक्रवात द्वारा बनाये गये जलशृङ्ग बुलबुलो का व्याकुल संसार बुलबुलों की अस्थायी सृष्टि। अपनी भंगुरता समझकर वे चंचल रहते हैं।

अर्थ—जब समुद्र में आँधी आती है और उठी लहरो शृङ्गों को विलोड़ित कर फेनिल करती हुई अन्त में उन्हें केवल अस्थिर बुलबुलों में बदल कर मिटा देती है, उसी समय न जाने कौन लहरो से हाथ उठा कर मुझे चुपचाप बुलाता है।

(५) श्री=सौन्दर्य। अलस=अलसाये हुए। बोर=डुबा कर। स्वर्ण=सोने का रंग।

कवि कहता है, मेरी भारत माता के बर्फीले मुकुट (हिमालय) जागृत हो जा, तू भारतवर्ष का चमकता हुआ मस्तक है। हे हिमालय पर्वतों के राजा उठो, (और देश की रक्षा करो)।

॥ इति शुभम् ॥

---

(२) अन्त के दो फार्म देवेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस में मुद्रित हुए हैं। कुल एक सौ तेरानवे पृष्ठ हैं।

पुस्तक मिलने का पता—
विद्यार्थी हितैषी कार्यालय
गढ़ाफाटक, जबलपुर।